

हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

‘कौल-कल्पतरु’

चण्डी

(सं० १६६६ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

वर्ष-५२

अङ्क-१



‘चण्डी’ मासिक पत्रिका के प्रवर्तक

पं० देवीदत्त शुक्ल

आविर्भाव : वैशाख, कृष्ण तृतीया, १९४५ वि०

१०६ वीं जयन्ती : ९ अप्रैल, १९९३

रजि० सं० ३२९८१/५७

रजि० सं० ए०डी० ९६

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्रीकृतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, प्रयाग-२११ ००६



जगदम्बा की सामूहिक उपासना

कल्याण का एकमात्र मार्ग

(‘कौल-कल्पतरु’ शुक्ल जी का ‘चण्डी’ १६४२ में प्रकाशित महत्त्वपूर्ण आह्वान)

आज अति ही दारुण समय उपस्थित है। माँ की शरण ग्रहण करने पर ही मानव का निस्तार हो सकता है। अब केवल वर्ष में दो बार माता की याद कर लेने से काम न चलेगा। चाहिए तो यह कि नित्य ही कुछ-न-कुछ समय निकाल कर माँ की याद अति श्रद्धा के साथ की जाय, परन्तु यदि यह सम्भव न हो, तो प्रति-मास शुक्ला अष्टमी को तो उनकी सेवा-पूजा में घण्टे-दो-घण्टे का समय अवश्य ही लगाया जाय।

क्या ही अच्छा हो, यदि प्रत्येक गाँव-शहर में किसी सुन्दर स्थान में शाक्त-बन्धु एकत्र होकर, घट-स्थापन-पूर्वक माँ का यजन-पूजन प्रारम्भ कर दें। घट-स्थापन-पूर्वक सविधि षोडशोपचार से माँ का पूजन कर चुकने पर जो लोग ‘चण्डी’ (श्रीदुर्गा सप्तशती) का पाठ कर सकते हों, ‘चण्डी’ का पाठ करें और जो पाठ न कर सकते हों, वे चुपचाप बैठ कर ‘मन्त्र-जप’ या ‘नाम-जप’ ही करें।

इस प्रकार जगदम्बा का यजन सामूहिक रूप से करने से लोक-कल्याण तो होगा ही, साथ ही परिवार-समाज में धार्मिक भावना का भी उदय होगा। ऐसा करने से ही आज कल्याण सम्भव है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।



जगदम्बा की आराधना हेतु सद्यः फलदायी ‘चण्डी’ मासिक पत्रिका पढ़ें !



मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज-२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ६

वार्षिक शुल्क : रु० ६५
आजीवन शुल्क : रु० ६५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ६००/४००
आजीवन : ६०००/४०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट
कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम
से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद
के पते पर भेजें।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज-२११००६

वर्ष ५२]

चैत्र, 'व्यय' सम्बत् २०५० वि०

* * *

[अङ्क १

अप्रैल, १९९३

शुभ कामना

पं० कपिलनारायण मिश्र, भोजपुर (बिहार)

मिटते रहें सब ताप तन के, हे सखे ! नव वर्ष में ।
दिव्य तेजों से रहे तब, दीप्त आनन वर्ष भर ।
उन्मत्त व्यथा सब स्वान्त के, मिटते रहें मरु-तल्प पर ॥
हों नयन सिक्त स्नेह से, हृत्-वेदना मिटती रहे ।
मृदु-मन्द ज्योति अखण्ड, मानस में सदा जलती रहे ॥
सूत्र सिद्धि का सदा, मिलता रहे इस वर्ष में—
हे सखे ! सब ताप तन के, नष्ट हों इस वर्ष में ॥
उग्र मन की भावनाओं पर, सदा पाकर विजय—
जटिल जीवन-पन्थ पर, निःशङ्क हो बढ़ते रहो ॥
है तरुण उम्र, उल्लास से पथ पर बढ़ो, जब हर्ष में—
हों विघ्न सारे नष्ट तब, पथ के सदा, इस वर्ष में ॥
मन हो भरा विश्वास से, औ लक्ष्य हो उत्थान का—
मद मस्त वन, दुर्दिन का प्रतिकार नित करते रहो ॥
द्वन्द्व दारुण हों विलय सब, रुद्र के अमर्ष में—
शुभ कामना है, मुक्त हों-कटुता-भरे सङ्घर्ष से ॥
मिटते रहें सब ताप तेरे, हे सखे ! इस वर्ष में ।

इस अंक में

० मङ्गल-कामना	...	१
० पर्व-सूची (७ अप्रैल से), 'व्यय' नाम का रहस्य	...	२
० धर्म-चर्चा	...	३
० सदाचार	...	६
० 'धर्म' और हमारी समस्याएँ	...	७
० साधक की साधना का फल	...	६
० योग-सिद्धि	...	११
० श्रीकाली-क्षेत्र	...	१२
० होरी	...	१६
० साधन-माला :	...	१७-३२

१०१ श्रीमहा-विद्या-स्तोत्र



पर्व-सूची

(वैशाख कृष्ण १, 'व्यय' सम्बत् २०५० वि०-७ अप्रैल, ६३ से)

- वैशाख कृष्ण १ बुधवार ७ अप्रैल, ६३ तुलसी-पत्र में श्रीविष्णु-पूजन । कच्छपावतार
 ,, ३ शुक्रवार ६ अप्रैल, ६३ सङ्कष्टी श्रीगणेश चतुर्थी व्रत
 ,, ८ बुधवार १४ अप्रैल, ६३ श्रीशोतला अष्टमी व्रत ।
 ,, ११ शनिवार १७ अप्रैल, ६३ वरूथिनी एकादशी व्रत ।
 ,, १४ मङ्गलवार २० अप्रैल, ६३ वैशाख-मास-शिव-रात्रि-व्रत ।
 वैशाख शुक्ल १ शुक्रवार २३ अप्रैल, ६३ शिवाजी जयन्ती ।
 वैशाख शुक्ल २ शनिवार २४ अप्रैल, ६३ श्रीपरशुराम जयन्ती । श्रीबदरी-केदार यात्रा
 वैशाख शुक्ल ३ रविवार २५ अप्रैल, ६३ वैनायकी श्रीगणेश चतुर्थी-व्रत ।
 वैशाख शुक्ल ४ सोमवार २६ अप्रैल ६३ आद्य जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य जयन्ती ।
 वैशाख शुक्ल ७ बुधवार २८ अप्रैल, ६३ श्रीगङ्गा सप्तमी । श्रीगङ्गा उत्पत्ति सप्तमी ।
 वैशाख शुक्ल ६ शुक्रवार ३० अप्रैल, ६३ श्रीसीता नवमी । श्रीजानकी महोत्सव



'व्यय' नाम का रहस्य

गोस्वामी तुलसीदास की सिद्ध वाणी—'कलजुग केवल नाम अधारा' के प्रति आज के हिन्दुओं का तनिक भी ध्यान नहीं है। क्या किसी ने विचार किया है कि नव-विक्रम-वर्ष के नाम 'व्यय' का रहस्य क्या है? इसका रहस्य 'अव्यय' नाम में छिपा है, किन्तु 'अव्यय' किसका नाम है? आधुनिक शिक्षितों का ध्यान व्याकरण के 'अव्यय'-शब्द के प्रति आकृष्ट होगा। वे यह नहीं सोच पाएंगे कि 'अव्यय' नाम है 'परमात्मा' का—'परा-शक्ति' का। अतः 'व्यय' नामक सम्बत्सर में जो 'परा-शक्ति' की भक्ति में तत्पर रहेंगे, जो 'परा-शक्ति' के कार्यों के प्रति अपने को समर्पित करेंगे, वे ही सभी प्रकार के 'व्यय' से बचते हुए, शक्ति-अर्जन कर सर्व-जित् शक्ति का अनुभव करेंगे। यही रहस्य है इस विलक्षण नाम का अथवा नवीन सम्बत् का।

—'कुल-भूषण'



‘चण्डो’ के प्रवर्तक ‘कौल-कल्पतरु’ पं० देवीदत्त शुक्ल

की

महत्त्व-पूर्ण टिप्पणियाँ

(१०६ वीं जयन्ती के पुनीत अवसर पर)

धर्म-चर्चा

(१)

इसमें सन्देह नहीं है कि हिन्दू का जीवन एक धार्मिक जीवन है, परन्तु इतना होते हुए भी उसमें सजीवता नहीं है। इसके कई कारण हैं, जिनमें मुख्य कारण यह है कि हिन्दू अपने ‘धर्म - शास्त्र’ से दूर होकर व्यक्ति-विशेष का अनुगामी हो गया है। अतएव इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि प्रत्येक व्यक्ति परावलम्बन को छोड़कर स्वावलम्बन को श्रेयस्कर समझे। यह बात तभी सम्भव होगी, जब वह ‘शास्त्र’ को अपना मार्ग - दशक बनाएगा। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि हिन्दू इस बात पर ध्यान-पूर्वक विचार करें और त्रुटियों को दूर कर, अपने को आदर्शों के अनुकूल बनाएँ क्योंकि परावलम्बी होने से जीवन में सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती।

(२)

अपना-अपना दृष्टि-कोण होना सर्वथा अनिवार्य है, परन्तु एक दृष्टि-कोण ‘शास्त्र’ का होता है, जिसके आगे अपने-अपने दृष्टि-कोणों को दबाना पड़ता है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि कभी-कभी हमारे आस्तिक बन्धु भी जान या अनजान में शास्त्र के दृष्टि-कोण के आगे अपने दृष्टि-कोण को कर देते हैं और यह बात तभी होती है, जब अहं का भाव प्रबल पड़ जाता है। यहीं विवाद और कलह का बीज-वपन होता है और जब यह अवस्था धर्म के क्षेत्र से सम्बन्ध रखती है, तब तो व्यक्ति का जो रूप व्यक्त होता है, वह और चाहे जिसका हो, धर्म का नहीं होता। ऐसा न होता, तो हम अपने धर्माचार्यों को शास्त्रीय मत का अपलाप करते न पाते। हम आए दिन देखते रहते हैं कि हमारे कितने ही आचार्य उन विषयों पर भी अपनी सम्मति देते रहते हैं, जिनका उन्हें ज्ञान भी नहीं होता !

[३]

(३)

जिस 'धर्म' ने हिन्दुओं को संसार में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया था, उसके अनुयायी वही हिन्दू आज वर्तमान अधो-गति को क्यों प्राप्त हैं ? क्या यह विचार करने की बात नहीं है ? परन्तु विचार करे कौन ? यहाँ तो सबको अपनी-अपनी पड़ी है ! जिस जाति के लोगों को जब केवल अपनी-ही-अपनी बात सूझने लगती है, तब उसके पराभव का सूत्र-पात होता है । ऐसी दशा में उसका महान्-से-महान् बल-शाली 'धर्म' भी उसका साथ किसी भी तरह नहीं दे पाता ।

कौन नहीं जानता है कि वही वेद, पुराण आदि 'धर्म-ग्रन्थ' यहाँ हैं, गङ्गा - यमुना जैसी पुनीत नदियाँ, काशी-प्रयाग जैसे पवित्र तीर्थ आज भी लाखों नर-नारियों का उद्धार कर रहे हैं और यही कौन भूल गया है कि इस देश के निवासी वशिष्ठ, कश्यप जैसे महर्षियों की सन्तानें हैं ? तब आज यह दशा क्यों है ? यही न कि हमारा दृष्टि-कोण बदल गया है और अब हम केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति करना चाहते हैं ।

(४)

इस अद्भुत संसार में 'धर्म' भी एक ही वस्तु है । यह मानव को भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालों का स्वामित्व प्रदान करने का वचन देता है । स्रष्टा ने अपनी सृष्टि के लाड़ले मानव के ऊधम को देखकर, उसे 'धर्म के ब्रह्म-पाश' से बाँध दिया है, जिससे वह अधिक उधम न मचाए और राह-राह चले । ईसाइयों और मुसलमानों ने 'धर्म' की 'एक-निष्ठा' और 'सम-भाव' के गुणों को लेकर, अपने समाज में उन्हें रूढ़ि का रूप दे दिया है । ईसाई तो और भी आगे हैं । वे तो असभ्यों को ईसाई बनाने के लिए, अपने जीवन की बलि तक देने से नहीं हिचके !

ये दृष्टान्त उन लाड़ले मानवों के हैं, जो 'ब्रह्म-पाश' से किसी तरह निपुच गए थे और अब पुनः वैसी भूल न कर बैठें, इसके लिए पाश में अच्छी तरह कस लिए गए हैं । पर, जिन्होंने उस 'पाश' को प्रारम्भ में ही सादर ग्रहण किया था, वे तो तभी से उसके सहारे चुपचाप अपना जीवन - यापन करते जा रहे हैं । फलतः उनके लिए 'पाश' कभी कसा नहीं गया ।

यही कारण है कि हिन्दू—'धर्म के प्रेम में' पागल नहीं रहते, किन्तु उनका सारा जीवन ही 'धर्म-मय' रहता है । 'धर्म के ब्रह्म-पाश' को ईश्वरीय आदेश मानकर हिन्दुओं ने अपने जीवन को जो धर्म-रूप प्रदान किया है, वही बात हिन्दुओं को मानव-समाज में एक विशिष्ट स्थान प्रदान किए हुए है ।

(५)

आज के करोड़ों हिन्दू-समाज को अपने ईश्वर पर विश्वास नहीं रहा, नहीं तो जिस देश के निवासियों को स्वयं जगज्जननी पराम्बा ने यह कह कर अभय किया था कि—'इत्थं यदा - यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति, तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरि - संक्षयम्'—वे आज यदि उसको भूले न होते, तो इस दुर्गति को कदापि न प्राप्त होते । हम वर्षों से देश के अपने बड़े-से-बड़े नेता को यह पुकारते सुन रहे हैं कि—'सङ्गठित हो ! सङ्गठित हो !!'—परन्तु कहीं किसी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी । हिन्दू-समाज यह सब होते हुए भी वैसा ही पहले की तरह अजाग्रत्, आलस्य - मोह - निद्रा - ग्रस्त तथा अचेत पड़ा हुआ है !

हमारे लोक-नेताओं के इस ओर किए गए सारे प्रयत्न केवल इसी कारण बेकार सिद्ध हो रहे हैं कि वे 'धार्मिक भाव' को लेकर नहीं उठते । हिन्दू-जाति, धर्म-जीवी जाति रही है और आज भी है । यदि उसको वैदिक संस्कृति का अमृत-पान कराया जाए, तो वह पहले की ही भाँति अपने शौर्य और बल-पराक्रम से ओत-प्रोत हो सकती है ।

(६)

हिन्दू - धर्म में ऐसी धार्मिक पद्धतियों तथा सामाजिक संस्कारों का महत्त्व - पूर्ण निर्देश है, जिनके अनुसार हिन्दू स्वयं अपने समाज में देश-कालानुसार आवश्यक परिवर्तन कर सकते हैं। खेद की बात है कि 'बुद्धि-वाद' के हमारे उत्साही प्रचारक अपने घर की पूँजी की जानकारी न रखकर विदेशी आदर्शों को ग्रहण कर अपने उद्देश्य की सफलता चाहते हैं, परन्तु उनका यह भारी भ्रम है। उनकी सफलता तभी 'कल्याण-प्रद' होगी, जब वे 'सत्य का आश्रय' ग्रहण करेंगे और सत्य - ग्रहण करने का मतलब यह है कि वे इसके लिए 'वैदिक साहित्य' का आश्रय लेकर अपने उद्देश्यों का प्रचार करें। तभी उन्हें वास्तविक सफलता प्राप्त होगी। वाक् - छल से अल्प - कालिक ही सफलता मिलती है। अतएव सत्य का आग्रह सदैव करना चाहिए क्योंकि—'सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्'।

(७)

हमारी 'भारतीय संस्कृति' अर्थात् 'वैदिक संस्कृति' ईश्वरीय देन है। यही कारण है कि यह अतीत काल से आज भी जैसी-की-तैसी विद्यमान है। खेद इतना ही है कि इस समय विश्व में आसुरी सम्पत्ति का प्राबल्य हो गया है। इससे इस देवी सम्पत्ति की सर्वत्र उपेक्षा की जा रही है ! उपेक्षा ही नहीं, उसका बुरे ढङ्ग से तिरस्कार तक किया जा रहा है ! यह भी उस ब्रह्माण्ड-नायिका की गूढ़ कलाओं की एक कला है। जैसे कभी दिन है, तो कभी रात; कभी गर्मी है, तो कभी शीत, उसी प्रकार कभी उसकी देवी सम्पत्ति का प्राबल्य है, तो कभी आसुरी सम्पत्ति का। अतएव विश्व-जन उसकी इन लीलाओं को देख कर कुण्ठित नहीं होते।

(८)

हिन्दू-जाति आज कितनी दैन्यावस्था को प्राप्त है ! उसकी धर्म-भावना आज के पतन के गर्त में से उसका उद्धार करने में सक्षम नहीं है। ऐसा क्यों ? इसका एक-मात्र यही उत्तर है कि हमने 'विधि' का महत्त्व नहीं समझा। यदि शास्त्र की 'विधि' ग्रहण किए रहते, तो हमारी जाति की आज यह दुर्दशा न होती। हिन्दू-जाति सदा धार्मिक जाति रही है। आज उसकी धार्मिक विधियाँ अस्त-व्यस्त हैं। आवश्यकता इस बात की है कि 'विधि' का महत्त्व समझा जाए और सभी धार्मिक कर्म सविधि ही किए जायँ, तभी अभीष्ट की सिद्धि मिल सकेगी।

(९)

'स्वयं रहना तथा दूसरे को भी रहने देना—दूसरे को ही नहीं, अनेकों को रहने देना'—यही 'वैदिक कल्चर' का व्यापक सिद्धान्त था और आज भी है। इसी सिद्धान्त के प्रति-पत्ति-स्वरूप आज की हिन्दू-जाति अपना अस्तित्व बनाए रखने में समर्थ हो सकी है, परन्तु इस महान् जाति के आज के मनीषी या तो उस सिद्धान्त को जानते नहीं हैं और यदि जानते हैं, तो ऐसा जान पड़ता है कि वे उसकी उपेक्षा करने ही में अपने देश का हित समझ रहे हैं। दोनों स्थितियों में यह बात विशेष रूप से चिन्त्य है।

चिन्त्य इसलिए है कि हमारे ये आज के मनीषी देश में एक नए 'महा-राष्ट्र' की रचना करने में संलग्न हैं और यह उनका प्रयत्न अपनी देशी प्रेरणा का फल नहीं है, किन्तु वैदेशिक राष्ट्रीयता की भावना के प्रभाव का दूषित परिणाम है—दुष्ट नकल-बाजी है !



सदाचार

[पं० देवीदत्त शुक्ल की प्रसिद्ध अप्राप्य पुस्तक 'हिन्दुओं की पोथी' से]

आत्मा की उन्नति के लिए सदाचार का पालन करना आवश्यक है। जो कर्म, 'धर्म' को लक्ष्य कर किया जाता है, वह 'सदाचार' कहा जाता है।

सदाचारों में पहला कृत्य ब्राह्म-मुहूर्त में अर्थात् सूर्योदय से एक घण्टा पहले सोकर उठ बैठना है। उस समय सावधान होकर 'ईश्वर का स्मरण' आदि करना चाहिए। फिर 'पृथ्वी' को नमस्कार कर श्रेष्ठ्या से उठकर हाथ-मुँह धोकर मल - मूत्र त्याग करने के लिए बाहर जाना चाहिए। मल - मूत्र त्याग करते समय बोलना, खखारना और हाँफना नहीं चाहिए। अग्नि, जल, सूर्य, वायु और पूजनीय लोगों के सामने मल - मूत्र नहीं त्याग करना चाहिए। जहाँ मल-मूत्र त्याग करे, वहाँ अधिक देर तक ठहरा न रहे। रास्ते में, भस्म पर, गोचारण-भूमि में, जोती हुई भूमि में, चिता-स्थान में, पर्वत पर, जीर्ण देव-मन्दिर में, वल्मीक पर, प्राणि-युक्त गर्त में, चलते-चलते, खड़े-खड़े, दिन में उत्तर - मुख होकर, रात्रि में दक्षिण-मुख होकर, दोनों की सन्धियों में उत्तर-मुख होकर मल-मूत्र नहीं त्याग करना चाहिए।

मल-मूत्र के बाद शौच-क्रिया में मिट्टी और शुद्ध जल का व्यवहार करना चाहिए। तीन बार मिट्टी लगाकर हाथ - पैर भी धोना चाहिए। मूत्र-त्याग के अनन्तर भी जल से शुद्ध होना चाहिए और हाथ-पैर भी धोने चाहिए। मल-त्याग के बाद हाथ-पैर धो चुकने पर मुख और आँखें धोनी चाहिए। इसके बाद खैर, कदम्ब, आम, नीम, बेल या मौलसिरी की दातून से दाँत और जीभ साफ करनी चाहिए। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति के दिन काठ की दातून से दाँत-जीभ नहीं साफ करनी चाहिए। पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके दातून नहीं करनी चाहिए।

दातून आदि कर चुकने पर स्नान करना चाहिए। स्नान मौन रहकर करना चाहिए। अस्वस्थ होने पर सिर न धोकर भी स्नान हो सकता है। अथवा गोले वस्त्र से शरीर पोछकर स्नान का काम चल सकता है। स्नान के समय शरीर में, विशेष कर सिर, कान और पैर में, तेल लगाना चाहिए, परन्तु सबेरे के स्नान में, 'व्रत', 'श्राद्ध' के दिन, 'द्वादशी' व 'ग्रहण' - काल में, तेल नहीं लगाना चाहिए।

स्नान के बाद अपने - अपने सम्प्रदाय के अनुसार चन्दन, भस्म और तिलक लगाकर माता-पिता, गुरु-जन तथा घर में जो कुल-देवता हो—इन सबको प्रणाम कर नित्य - कर्म तथा इष्ट - देवता का पूजन करना चाहिए। मध्याह्न-कृत्य में भोजन मुख्य है, परन्तु भोजन के पहले होम, वैश्वदेव, बलि, अतिथि-सेवा, नित्य-श्राद्ध, गो-ग्रास-दान आदि कर्म कर लेने चाहिए। भोजन-कर्म भी एक प्रकार का 'यज्ञ' है, इसलिए उसमें पवित्रता का पूरा ध्यान रखा जाता है। चाहे जिस स्थान में तथा खड़े-खड़े भोजन नहीं करना चाहिए अर्थात् भोजन का स्थान 'गो - मय', जल आदि से शुद्ध हो तथा एकान्त में हो। भोजन करनेवाला भी स्नान आदि से शुद्ध हो तथा भोजन-सामग्री भी शुद्ध और सात्त्विक होनी चाहिए। एक पंक्ति में भोजन के समय भस्म, तृण या जल से पंक्ति-भेद कर लेना चाहिए। गो - मय - लिप्त स्थान में, लघु आसन पर, 'पूर्व'-मुख होकर भोजन करना चाहिए।

भोजन के उपरान्त इतिहास, पुराण तथा धर्म-शास्त्र की चर्चा करनी चाहिए। सन्ध्या-समय 'सन्ध्या' और 'इष्टोपासनादि कार्य' करने चाहिए। रात्रि में एक प्रहर रात्रि के भीतर ही भोजन करके सो जाना चाहिए।

धर्म और हमारी समस्याएँ

[अनादि 'आस्था-पत्रिका' से साभार]

आधुनिक भारत में राजनीतिक व्यवसाय - रत समाज - सेवियों के एक समूह का मत है कि भारत एक-जुटा और विशालता का इतना परिचायक कभी नहीं रहा, जितना वर्तमान समय में है। इस कथन पर सहमति हेतु आधार खोजने होंगे और अतीत के इतिहास में झाँकना होगा।

उपर्युक्त कथन पर विवाद उठाए बिना, इसे सार्थक अथवा निरर्थक कहना युक्ति - युक्त प्रतीत नहीं होता। फिर भी विवाद को मुद्दा न बनाकर, यदि वर्तमान भारत की चहु - मुखी समस्याओं पर दृष्टि-पात करें, तो शरीर में सिहरन और मस्तिष्क में घुटन के लक्षण विद्यमान प्रतीत होंगे।

यह तथ्य कदापि विस्मृत करने योग्य नहीं है कि एक सतत विकास-शील राष्ट्र की समस्याएँ भी अपने आप में बेढब और विचित्रता लिए होती हैं। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। हमारे देश में सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ विशेष रूप से सामान्य नागरिक का ध्यान आकृष्ट करती हैं। अन्य समस्याएँ भी अपना स्वरूप अक्षुण्ण बनाए हैं, परन्तु इन्हीं पर ध्यान केन्द्रित करना वाञ्छित है।

हमारी सामाजिक समस्याओं और आर्थिक समस्याओं का सम्बन्ध हमारे अतीत से सम्बद्ध विषय-वस्तु है। ऐसा कैसे और क्यों कर सम्भव है कि हमारे अतीत में ये समस्याएँ हमसे जुड़ी न रही हों तथा वर्तमान में ही इनका प्रादुर्भाव हुआ हो ?

यदि निष्पक्ष रूप से हमारी सहमति का आधार बन पड़ता है और हम यह स्वीकार करते हैं कि इनका सम्बन्ध हमारे अतीत से है, तो फिर अतीत के इतिहास की मीमांसा आवश्यक प्रतीत होगी। अतीत का इतिहास अपने आञ्चल में विस्तृत सामग्री बटोरे है। उसकी मीमांसा हमें धीरज-सहित पूर्वाग्रह से मुक्त होकर ही करनी होगी। आज सामाजिक समस्याओं की पृष्ठ-भूमि में पश्चिमी उष्णता से मन और मस्तिष्क को गति-शील रखनेवाले तथा-कथित सम्भ्रान्त और बौद्धिक वर्ग की दृष्टि में हमारा 'धर्म' ही इस दुःखद स्थिति का कारण है। ऐसा मानने और स्वीकार करनेवाले व्यक्ति अपनी सामर्थ्य भर 'धर्म' पर प्रहार करते नहीं थकते और वे विचित्र तर्क प्रस्तुत करते हैं। अपनी बात के प्रमाण में 'धर्म' का जो अर्थ वे प्रतिपादित करते हैं, मात्र वही और उतना ही 'धर्म' का अर्थ है अथवा और कुछ भी, यह विचारणीय है।

यदि 'धर्म' के वास्तविक अर्थ से वे अनभिज्ञ हैं, तो फिर यह शब्द वास्तव में किस अर्थ का प्रतिपादक है, यह जानना सर्वथा उचित और हितकर होगा। 'धर्म' वास्तव में व्यापक परिप्रेक्ष्य में चिन्तनीय शब्द है। मनुष्य के धारण करने की जो सहज प्रवृत्ति है, वही 'धर्म' का मूल है। 'धर्म' से धारण करने की क्षमता का बोध होता है। उससे सम्बद्ध व्यवहार और आचरण-प्रणाली तो पश्चात् की स्थिति है। अतः 'धर्म' नैसर्गिक स्वभाव है। इसमें गति है, जड़ता नहीं। सभी जातियों में समय - समय पर देश, काल और स्थिति के अनुसार महान् समाज-द्रष्टा ऋषियों, सन्तों, सूफियों, पैगम्बरों तथा दार्शनिकों एवं समाज के चेतन्य-शील प्रबुद्ध-वर्ग ने इसकी व्याख्या की है। यह व्याख्या एक राष्ट्र अथवा एक जाति से दूसरी जाति तक एक जैसी शब्दावली की ही परिचायक हो, यह आवश्यक नहीं।

'धर्म' मनुष्य की चेतना का प्रतीक है और अधर्मी होना उसके अचेतन और विकृत होने का प्रतीक है। यहाँ यह पुनः स्मरण करना उचित होगा कि 'धर्म' शब्द को किसी भी संकुचित अर्थ में बाँधना अथवा इसे सम्प्रदाय, पद्धति, प्रणाली आदि से सम्बद्ध करना न तो उचित है और न वाञ्छनीय।

‘धर्म’-शब्द के परोक्ष में जो तत्त्व है, वही श्रेयस्कर है। उसी का अनुसन्धान करना हितकर और उपयोगी होगा। इस कथन को और स्पष्ट करने के लिए एक वैदिक मन्त्र का उल्लेख करना इस सम्बन्ध में सहायक होगा, यही हेतु है। यह मन्त्र ‘यजुर्वेद’ (अ० ३६/मं० १८) का है और इसका भावार्थ निम्न प्रकार है—“हे परमात्मा ! मुझे दृढ़ करिए। सभी प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और मैं भी सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ। हम सभी लोग मित्र की दृष्टि से सबको देखें।”

स्पष्ट है कि उक्त अर्थ-भाव कितना मानवता-वादी है। इसे धारण करना और तदनुरूप आचरण-रत होना ही वास्तव में ‘धर्म’ का और उसकी प्रणाली का वास्तविक बोध कराता है। यह तो मात्र एक मन्त्र की स्थिति है। इस सम्बन्ध में और भी बहुत से मन्त्र प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

हमारी सामाजिक समस्याओं की पृष्ठ-भूमि में, उक्त बात को स्वीकार करके चलना हितकर होगा। इससे इस वास्तविक तथ्य के प्रति जागरूक बने रहने में सहायता मिलेगी कि ‘मूलतः धर्म विकृति का कारण नहीं। विकृति का कारण है—धर्म की व्याख्या, पद्धति और प्रणाली-गत दोष। इन दोषों को तो हम पहचान नहीं पाते और सारा आक्रोश ‘धर्म’ पर ही उड़ेलते हैं !

‘जन्मना जायते शूद्रः, कर्मणा द्विज उच्यते’—जैसे सु-स्पष्ट वाक्य का भी बहुधा अनर्थ ही लगाया जाता है। व्याख्याकारों ने इसे भी अपने-अपने राग-द्वेष से मुक्त नहीं होने दिया !

आर्य संस्कृति और ‘धर्म’ के मूल में जो तथ्य सर्वाधिक रूप से उजागर है, वह है ‘कर्म - पक्ष’। कर्म का ही अवलम्बन करके वाल्मीकि महर्षि - पद को प्राप्त हुए। विश्वामित्र की भी ऐसी ही स्थिति है। दोनों में जन्म का आधार ‘धर्म’ के अर्थ में स्वीकार नहीं हुआ। वास्तव में ‘धर्म’ को ‘जन्म’ की प्रधानता कभी मान्य नहीं हो सकती।

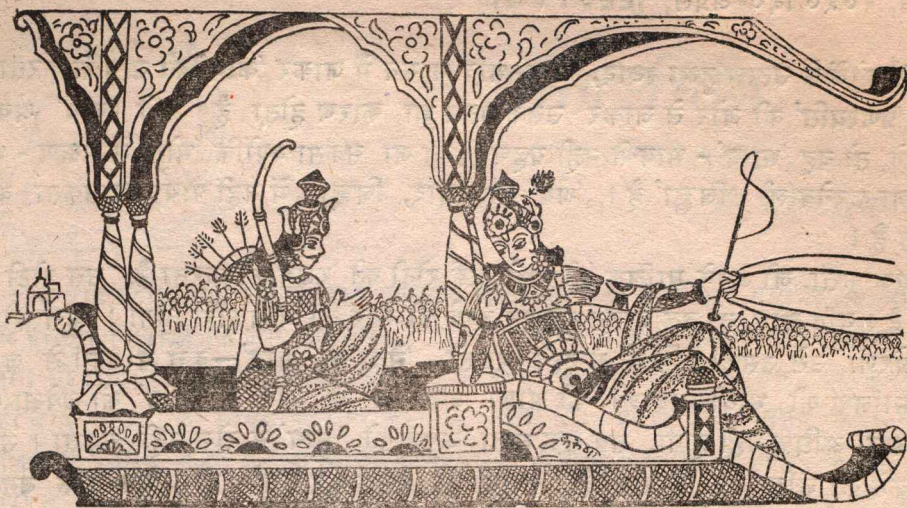
सामाजिक पृष्ठ-भूमि में चिन्तन-शील होने पर, आज के अर्थ - प्रधान युग में बुराई की जड़ किसे स्वीकार किया जाय ? ‘धर्म’ को या ‘अर्थ’ को ? स्पष्ट ही है कि अर्थ-परक मनोवृत्ति ने सभी कुछ को दूषित किया है—समाज, संस्कृति, भाईचारा और मानवता—सभी इस अर्थ - परक संस्कृति की वक्र दृष्टि से मूर्छित हुए हैं। ‘अर्थ’ पर जितना प्रभावी जोर आज दिया जाने लगा है, वही मूल में समस्त बुराइयों का कारण है, परन्तु चोर कब स्वीकार करेगा कि मैं चोर हूँ ?

ऐसी स्थिति में जो मिथ्या दोषारोपण ‘धर्म’ पर हो रहा है, वह पढ़े-लिखे व्यक्तियों के मुख से अनपढ़ व्यक्तियों की हास्यास्पद चर्चा जैसी प्रतीत होती है और कुछ नहीं। ‘धन’ या ‘अर्थ’ की वैचारिक दासता से ग्रसित हो जाने पर हम अपने सहज और स्वाभाविक रूप में परिवर्तन लाने लगते हैं। भले ही यह परिवर्तन हमें शीघ्र बोध-गम्य न हो, परन्तु होता है और होता रहता है। इसमें सन्देह नहीं।

‘धर्म’ ही अर्थ, काम और मोक्ष की सीढ़ी भी है, परन्तु उसके लिए चढ़ने का परिश्रम करना पड़ता है। जो वह परिश्रम नहीं करता, वह स्वार्थ के वशीभूत होकर ‘अर्थ’ में ही जकड़ता चला जाता है। प्रमाद-वश उसे वही उचित और श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

‘धर्म’ ही वह आनन्द है, जो नित्य है—स्थायी रूप से विद्यमान रहता है। उसमें कभी न्यूनता नहीं आती और वह कभी अपने अर्थ नहीं बदलता। ‘धर्म’ में द्वेष, घृणा, हिंसा और भ्रष्टाचार के लिए तनिक भी स्थान नहीं है। सच्चा ‘धर्म’ सदैव मानवता का पोषक होता है।





साधक की साधना का फल

(‘गीता’ के अविद्यात्मक वर्णन का विवेचन)

गुप्तावतार बाबाश्री

भव-सागर में सात फेरों में धुमा कर डुबोनेवाला भँवर का अविद्यात्मक वर्णन भगवान् कृष्ण ने ‘गीता’ में किया है। यथा—१ सङ्गात् सञ्जायते २ कामः, कामात् ३ क्रोधोऽभिजायते, क्रोधाद् भवति ४ सम्मोहः, सम्मोहात् ५ स्मृति-विभ्रमः, स्मृति-भ्रंशाद् ६ बुद्धि-नाशो, बुद्धि-नाशात् ७ प्रणश्यति।

इसी भँवर का विद्यात्मक वर्णन पाँच भावों में किया जा सकता है। यथा—१ सङ्गात् सञ्जायते २ शक्तिः, शक्त्या ३ भावो विवर्धते, भावाद् भवति ४ विज्ञानं, विज्ञानात् ५ श्रेयमाप्नुयात्।

इस प्रकार सङ्ग ही श्रेयत्व तथा हेयत्व का देनेवाला होता है। बड़े लोगों ने कहा है कि विषय (प्रेय) सङ्ग—हेयत्व को देता है और श्रेय सङ्ग (सत्सङ्ग)—श्रेयत्व को देता है।

जिसे हम ‘प्रिय’ कहते हैं, वह ‘वस्तु’ नहीं है। ‘प्रिय’ एक ‘स्वाद’ का नाम है। ‘स्वाद’, ‘प्रिय’ लगता है, ‘वस्तु’ नहीं क्योंकि ‘प्रियत्व’ रुचि-भिन्नता से भिन्न-भिन्न होता है। किसी को मिष्ठ प्रिय है, तो किसी को खट्टा व तखा। प्यारी-से-प्यारी वस्तु को काल खा जाता है। तब उसका भोक्ता, दूसरी वस्तु से वही या उससे अच्छा ‘स्वाद’ पाने की कोशिश करता है।

‘मन’ का सङ्ग ‘वस्तु’ से नहीं होता, ‘स्वाद’ से होता है। ‘स्वाद’ को उत्पन्न करनेवाली ‘इन्द्रिय’ है। रुचि के अनुसार ‘स्वाद’ को इन्द्रियाँ भोगती हैं तथा ‘मन’ उसमें सुख-दुःख का अनुभव करता है। ‘मन’ इन्द्रियों द्वारा रुचि-कर वस्तु को भोगने की इच्छा करता है। इसी को ‘स्वाद’ कहते हैं।

यदि इन्द्रियाँ न हों या अशिक्षित हों या रोगी हों, तो ‘स्वाद’ की उत्पत्ति न होगी अथवा विगड़ा हुआ होगा। इन्द्रियाँ ‘स्वाद’ को भोगती हैं परन्तु उस ‘स्वाद’ को मन में पहुँचाने का मार्ग ‘भाव’ है। जिस ‘भाव’ से स्वाद लिया जाए, वैसा ही ‘भोग’ मन में उत्पन्न होगा। नैवेद्य का स्वाद दूसरा होगा, चोरी अथवा लूट से प्राप्त वस्तु का स्वाद दूसरा, कमाए हुए भोजन का स्वाद दूसरा, भिक्षा अथवा दान से प्राप्त वस्तु का स्वाद दूसरा। अतः भिन्न-भिन्न भावों से प्राप्त, एक ही वस्तु का भिन्न-भिन्न स्वाद होता है। इसमें ‘काल’ और ‘स्थान’ की भिन्नता भी अपना असर डालती है।

‘प्रेम’ में से उत्पन्न हुआ स्वाद, ‘भोग’-भाव से मन में जाकर ‘काम’ की उत्पत्ति करता है। यही व्यक्ति को ‘प्रणश्यति’ की ओर ले जाकर उसके पतन का कारण होता है। यही ‘स्वाद’ श्रेय दिशा में से यदि जागे, तो वह ‘भाग्य’ - भाव से नहीं ग्रहण किया जा सकता क्योंकि ‘भोग’ में भक्षण - भाव है, व उसमें प्रेरणा करनेवाली ‘जिह्वा’ है। ‘श्रेय’ का स्वाद, ‘जिह्वा’ में नहीं पाया जा सकता क्योंकि वह इन्द्रियातीत है।

एक कुत्ता, जो अपने मालिक की रखी हुई रोटी की रखवाली करता है, उस रोटी को स्वयं खा सकता है। यदि खाए, तो वह भोक्ता बनकर डण्डे की मार का अधिकारी होगा। कुत्ते को रखवाली करने की प्रेरणा, उसे उसकी इन्द्रियों से नहीं मिलती। ‘सेवा का भाव’—कुत्ते में कहाँ से जागता है? जब तक मालिक की भावी शाबाशी की आशा व कल्पना में, रोटी के ‘स्वाद’ की अपेक्षा स्वामी की सेवा का स्वाद अधिक नहीं होगा, तब तक कुत्ता अपने को ‘भोग’ से रोक नहीं सकता। उसमें अपने आपको रोकने की शक्ति कहाँ से आती है? स्वामी को प्रसन्न कर उसके ही अधिकाधिक बनते जाने के भाव द्वारा।

अतः मन के सेवा-स्वाद को ग्रहण करने में, ‘भोग’-शक्ति पतन का हेतु है। अपने को रोककर, स्वयं केन्द्र न बनकर—‘श्रेयत्व’-मय प्रभु-भावना को केन्द्र बनाकर, उसके बनने के प्रयत्न में जो संरक्षणी ‘शक्ति’ प्रकट होती है, वही पावन बनने का हेतु है।

सारांश यह है कि प्रेय सङ्ग, जिसमें हमें वस्तु प्रिय लगती है, वह हमारे मन में भोक्ता - केन्द्र बनाकर ‘काम’ को उत्पन्न करता है और ‘काम’ हमारा भक्षण कर हमारा पतन करता है।

श्रेय सङ्ग को, जिससे हमें किसी भी वस्तु में श्रेयत्व दिखता है, केन्द्र बनाने से वह हमें केन्द्रत्व-पाश से छुड़ा कर, हमारा संरक्षण करनेवाली ‘शक्ति’ उत्पन्न करता है, जो हमारी सद्भावना की वृद्धि करती है और हमें अधिक उच्च शिक्षण का अधिकारी बनाकर, नवीन रूप से गुरु-कृपा-रूपी सञ्जीवनी-शक्ति को प्रकट कराती है, जिससे व्यक्ति का उद्धार होता है।

यहाँ एक बड़ा भारी प्रश्न उत्पन्न होता है। ‘श्रेय’—सङ्ग से प्रकट हुई ‘शक्ति’ विद्यात्मिका होने से उसका सङ्घर्षण अविद्या से होता ही रहता है। प्रलोभन डग-डग पर सता कर परीक्षा लेते ही रहते हैं। मात्र श्रेयत्व-सङ्ग-जनित ‘शक्ति’ परीक्षा में उत्तीर्ण होने का कारण नहीं बनती। उस ‘शक्ति’ को अविद्या चाट जाती है। इस व्यर्थ जाते हुए खर्च में से बचने का क्या उपाय है? कोई भी सत् - कार्य सम्मुख हो, अथवा करने जाते ही ‘विघ्न’ ही नहीं, ‘आपत्ति’ खड़ी होती है और होती ही जाती है। उसमें से गुरु-कृपा अर्थात् सञ्जीवनी-शक्ति ही बचानेवाली है, परन्तु उस कृपा को प्रकट कैसे किया जाय व उसका पात्र कैसे बना जाय व तदर्थ क्या प्रयत्न किया जाय? यह एक बड़ा भारी प्रश्न रह जाता है।

‘जीभ’ अपना स्वभाव नहीं छोड़ सकती, ‘प्रेय’ अवश्य मीठा लगा ही करेगा, मीठे में ‘आकर्षण’ अवश्य होगा ही। यही तो अविद्यात्मक स्वभाव है। यह कैसे छोड़ा जा सकता है? यह तो सारे विश्व में व्याप्त है। हमारा ‘मन’, इस स्वभाव को न समझ सकने के कारण अपने हेय भावों के केन्द्र में फँस कर भक्षणी भोग-गति के तड़ाके में आकर, अपने पतन का अनुभव कराता है। अविद्यात्मक स्वभाव हमारी सत्सङ्ग-जनित ‘शक्ति’ की परीक्षा करता है। उस ‘शक्ति’ में भी वह अवश्य है। इसलिए वह कभी भी करवट बदलकर लुप्त हो जा सकती है। इस अविद्यात्मक स्वभाव को समझना ही, साधक की साधना का एक-मात्र विध्य फल है।

[‘बाबाश्री चरितामृत’ पुस्तक, मूल्य ३० रु० से उद्धृत]



‘योग’-सिद्धि

(एक संक्षिप्त चर्चा)

श्री चैतन्य शुक्ल, प्रयाग

पूज्य-पाद योगि-राज श्री भगवान् दत्तात्रेय जगद्-गुरु तथा पूज्य-पाद महर्षियों ने अष्टाङ्ग-योग के विषय में इङ्गित किया है कि जैसे सीढ़ी-सीढ़ी चढ़कर मनुष्य नीचे से छत पर पहुँच जाता है, वैसे ही अष्टाङ्ग-योग की आठ सीढ़ियों पर क्रमशः चढ़ता हुआ योगी समाधि-भूमि में पहुँचकर कृत-कृत्य होता है। पहली सीढ़ी बहिरिन्द्रियों का निग्रह करानेवाली सीढ़ी ‘यम’ है। अन्तरिन्द्रिय-निग्रह करानेवाली सीढ़ी दूसरी है, जिसको ‘नियम’ कहते हैं। अपने स्थूल शरीर को योग-युक्त बनाने के लिए ‘आसन’ का साधन होता है, जो तीसरी सीढ़ी है। इसी प्रकार, स्थूल शरीर पर प्रभाव जमाकर, वायु की सहायता से ‘प्राण’ पर आधिपत्य करने का जो साधन ‘प्राणायाम’ है, वह चौथी सीढ़ी है।

इसके बाद साधक बहिर्जगत् से अन्तर्जगत् में पहुँचता है। बहिर्जगत् से अन्तर्जगत् में पहुँचने का जो प्रयत्न है, उसको ‘प्रत्याहार’ कहते हैं, यह पाँचवीं सीढ़ी है। जिन साधनों के द्वारा अन्तर्जगत् में योगी ठहरा रहता है, उनको ‘धारणा’ कहते हैं, जो महा-योग की छठी सीढ़ी है। अन्तर्जगत् में पहुँचकर परमात्मा के स्वरूप का ध्यान करने का नाम ‘ध्यान’ है, जो सातवीं सीढ़ी है। सर्वोत्तम आठवीं सीढ़ी के साधन के द्वारा १ ध्याता, २ ध्यान और ३ ध्येय—रूपी त्रि-पुटी का विलय होकर, साधक परमात्मा के साथ मिलकर, उनके चरणों में लीन हो जाता है, इसका नाम ‘समाधि’ है।

यह ‘समाधि’ दो प्रकार की होती है। एक ‘सविकल्पक समाधि’ और दूसरी ‘निर्विकल्पक समाधि’। ‘सविकल्पक समाधि’ में द्वैध का कुछ भाव रहता है और निर्विकल्पक में द्वैध का भाव सर्वथा नष्ट हो जाता है। सविकल्पक समाधि की दशा में, अपने अन्तःकरण की योग की क्रिया के अनुसार किसी विषय में संयम करने से उस विषय पर योगी का आधिपत्य हो जाता है। संयम की यह सिद्धि, उन्नत श्रेणियों के योगियों को, अपने आप ही प्राप्त हो जाती है।

योग-शास्त्र का सिद्धान्त है कि धारणा, ध्यान, समाधि से योगी को सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अलौकिक ‘योग-सिद्धि’ के द्वारा योगी दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकता है, जैसा कि भगवान् शङ्कराचार्य ने किया था। ‘योग-सिद्धि’ के बल से, पूर्णवितार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने एक ही समय में अपने अनेक शरीर प्रकट करके भक्तों का कल्याण किया था। ‘योग-शक्ति’ के ही प्रभाव से, दैवी जगत् में संयम करते हुए, पूज्य - पाद महर्षियों ने दैवी जगत् के स्वरूप, दैवी जगत् की व्यवस्था, नाना ग्रह-नक्षत्रादि गति और स्थिति का ज्ञान तथा नाना शास्त्रों का आविर्भाव किया था।

वास्तव में, मनुष्य का अन्तःकरण विश्व का माध्यम है और संयम - शक्ति से युक्त साधक का अन्तःकरण ‘योग-शक्ति’ के सम्पूर्ण अधिकारों को प्राप्त कर लेता है। ऐसा योग-युक्त अन्तःकरण, विश्व-ब्रह्माण्ड में सर्वत्र पहुँच सकता है और भगवान् की अष्ट-सिद्धि-लाभ कर सकता है।

होली

श्री प्रेमशङ्कर सिंह, रायपुर [म० प्र०]

जयति जय श्रीदुर्गा महारानी,
जयति जय श्री विन्ध्याचल रानी,
जयति जय दुरतिक्रमा-विरोधी,
जयति जय शुभदा कल्याणी,
जयति जय चिर चैतन्यता-प्रदायिनी ।
जय विपद-विनाशिनी,
जयति जय दुर्गति-विनाशिनी,
जयति जय, वीर-भाव-रक्षिका,
जयति जय सत्य-निष्ठा-रक्षिका,
जयति जय, नैतिकता, पवित्रता, चरित्र-रक्षिका,
जयति जय, पवित्र शक्ति-प्रदायिनी ।
जयति जय श्रीदुर्गा महारानी ।
ईमानदारी की रक्षा करनेवाली,
दुख-दारिद्र्य दूर करनेवाली ।
अचल सुख-सम्पदा,
अचल भक्ति, अचल ज्ञान-प्रदायिनी ।
जयति जय श्रीदुर्गा महारानी ।
जयति जय दुरतिक्रमा-विरोधी ।

प्रगति क्रम-प्रदायिनी ।
जयति जय श्रीदुर्गा महारानी ।
सुख-सम्पदा-प्रदायिनी ।
'प्राञ्जल' व वि को आंचल की छाया दे दे अभया
जयति जय ग्राम-वासिनी भारत-माता ।
जयति जय कश्मीर-निवासिनी माँ शारदा
जयति जय श्रीहिङ्गलाज भवानी
पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण सम्पूर्ण भारत-रक्षिका
अखण्ड चेतना अखण्ड भारत-प्रवासिनी ।
जयति जय श्रीदुर्गा महारानी ।
जयति जय श्रीविन्ध्याचल-महारानी ।
अखण्ड भारत में अपना आंचल फैला दे अभया
शङ्ख-चक्र-गदा-त्रिशूल-दण्ड—
नाग-पाश, डिम-डिम डमरू-नाद-फैला दे ।
मेरे सम्पूर्ण भारत को एक कर दे ।
अखण्ड स्वराज्य दे दे मैय्या—
जयति जय श्रीदुर्गा महारानी ।
जयति जय श्रीविन्ध्याचल रानी ।



५० वर्षों से
प्रकाशित

‘कौल-कल्पतरु’ चण्डी

मासिक पत्रिका का वार्षिक सदस्य आज ही बनें,
वार्षिक सदस्यता शुल्क भेजने का पता—
चण्डी-कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग-२११००६



गढ़वाल का सिद्ध-पीठ

श्रीकाली-क्षेत्र

❧ 'कुल-सङ्ग-शेखर' पण्डित देवीप्रसाद चित्ठियाल

भारत-वर्ष के शक्ति-पीठों में से अधिकांश काश्मीर से लेकर आसाम प्रान्त तक हिमालय पर्वत में ही स्थित हैं। इनमें से भी गढ़वाल प्रान्त में शक्ति-पीठ सर्वाधिक संख्या में विद्यमान हैं। गढ़वाल में पग - पग पर आपको देवियों के स्थान मिलेंगे। कहीं पर विशाल मन्दिर है, कहीं पर छोटी मढ़ैया है, कहीं पर खुले हुए चबूतरे हैं। इनमें यन्त्र, मूर्ति तथा शिला-खण्ड पाए जाते हैं। शिला-खण्ड तथा मूर्तियाँ खुली हुई हैं। परन्तु 'यन्त्र' प्रायः ढके हुए ही हैं और इनके दर्शनों की मनाही है तथा इनके विषय में जन - श्रुतियाँ हैं कि जिस किसी ने उक्त यन्त्रों को देखने का प्रयत्न किया, वही गूंगा, अन्धा, बहरा या पागल हो गया। अतएव कोई भी भक्त अथवा उपासक—जिस किसी को इन स्थानों में जाने का अवसर प्राप्त हुआ, इन यन्त्रों को उधार कर देखने का प्रयत्न नहीं करता।

उक्त शक्ति-पीठों का वर्णन स्कन्द-पुराणान्तर्गत केदार-खण्ड में मिलता है। गढ़वाल देश का ही प्राचीन नाम केदार-खण्ड है क्योंकि इसी देश में श्री केदारेश्वर महादेव विराजमान हैं, जिनके नाम से इस देश का नाम केदार-खण्ड पड़ा। भारत-वर्ष के प्रसिद्ध तीर्थ बदरीनाथ, केदारनाथ, गङ्गोत्तरो, यमुनोत्तरो इसी केदार-खण्ड के अन्तर्गत हैं।

केदार-खण्ड (अथवा गढ़वाल देश) में एक विशिष्ट भू-भाग को केदार - मण्डल कहते हैं। यह भू-भाग श्रीअलकनन्दा तथा मन्दाकिनी—दो नदियों के बीच में है। इसमें पञ्च - केदार प्रतिष्ठित होने से इसका नाम केदार-मण्डल पड़ा। ये पञ्च-केदार इस प्रकार हैं—(१) श्रीकेदारनाथ, (२) श्रीमध्यमेश्वर, (३) श्रीतुङ्गनाथ, (४) श्रीरुद्रनाथ (५) श्रीकल्पेश्वर। जो लोग बद्री-केदार यात्रा करने जाते हैं, उनमें से विशिष्ट शिव-भक्त इन पञ्च-केदार के दर्शन अवश्य करते हैं।

केदार-मण्डल के अन्तर्गत काली-क्षेत्र (अथवा काली-तीर्थ) अवस्थित है। हरद्वार से ६६ माइल की दूरी पर, जिला गढ़वाल में श्रीवदरीनारायण के मार्ग पर रुद्र-प्रयाग नाम का स्थान है, जो श्रीअलकनन्दा तथा मन्दाकिनी के सङ्गम पर अवस्थित है। यहाँ यात्री-गण, केदार-यात्रा करने के लिए अलकनन्दा को पार करके मन्दाकिनी के वाम-तट होकर यात्रा करते हैं। रुद्र-प्रयाग से अनुमानतः २७ माइल की दूरी पर मन्दाकिनी के तट पर गुप्त-काशी नाम का स्थान है। गुप्त-काशी से ३ या ४ माइल ऊपर श्रीकेदारनाथ की तरफ चलकर, श्रीकेदारनाथ का राज-मार्ग छोड़ देना पड़ता है और दाहिने हाथ की तरफ का मार्ग ग्रहण करके मन्दाकिनी को पारकर यात्री सरस्वती नदी के तट पर अवस्थित श्रीकाली-क्षेत्र में पहुँच जाते हैं। सरस्वती नदी को ही काली-गङ्गा भी कहते हैं।

श्रीकाली-क्षेत्र (या काली-तीर्थ) को गढ़वाली लोग श्रीकाली-मठ कहते हैं। आकाश - चुम्बी कृष्ण-वर्ण पर्वत-मालिकाओं के मध्य चतुर्दिक् निविड़ वन से आच्छन्न श्रीकाली - क्षेत्र, यात्रियों के मन में एक साथ ही भय तथा श्रद्धा का सञ्चार करता है। इस घाटी के बीच में काल - गङ्गा (सरस्वती) की

धूमिल-वर्ण पतली जल-रेखा, कृष्ण-वर्ण प्रस्तर-खण्डों से वेग से टकराती हुई बहती है। घाटी में मध्याह्न के सूर्य-प्रकाश में भी ऐसा लगता है, मानों हम किसी काजल से भरे हुए स्थान में हों। यह देखकर ज्ञात होता है कि माँ काली ने अपने अनुरूप ही अपना निवास-स्थान चुना है।

श्रीकाली-क्षेत्र में दो छोटे मन्दिर तथा एक चारों तरफ से खुली हुई मढ़ैया है। मढ़ैया श्रीकालिका की है और मन्दिर महा-लक्ष्मी तथा महा-सरस्वती के हैं। नदी के परली पार एक सीधा काला पर्वत है, जिसके शिरो-भाग में बहुत बड़ी काले रङ्ग की शिला है। इस शिला को काल-शिला कहते हैं। यह शिला स्थान-स्थान पर सफेद स्फटिक जैसे चमकीले पत्थरों से जड़ी हुई है, जिनके अन्दर दिन में सूर्य के प्रकाश में सैकड़ों त्रिकोण, अष्ट-कोण, षट्-कोण, सर्वतो-भद्र इत्यादि मण्डल दिखाई देते हैं। इस काल - शिला को 'रण - मण्डना' का स्थान कहा जाता है। यह शिला अनुमानतः सरस्वती-तट से तीन मील होगी। सरस्वती-तट से यहाँ बड़े विकट पहाड़ी चक्करदार मार्ग से आना पड़ता है।

श्रीकाली-क्षेत्र का वर्णन तथा माहात्म्य स्कन्द-पुराणान्तर्गत केदार-खण्ड के अध्याय ८१ से ८६ तक में विस्तार से दिया हुआ है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

'काली-क्षेत्र केदार-मण्डल के अन्तर्गत परम पुनीत क्षेत्र है; जहाँ एक लक्ष ब्रह्म-राक्षस मोक्ष को प्राप्त हुए थे। यह वही तीर्थ है, जहाँ प्राचीन काल में देवताओं ने दैत्यों से प्रताड़ित होकर 'रक्त-बीज'-वध के लिए श्रीकाली की आराधना की थी।

जब ब्रह्मा जी से वर प्राप्त करके रक्त - बीज नाम का दैत्य पराक्रमी हो गया तो वह शुम्भ-निशुम्भ, चण्ड-मुण्डादिक दैत्यों के साथ देवताओं पर चढ़ दौड़ा। उसने देवताओं को बुरी तरह पराजित करके देव-पुरी अमरावती पर अधिकार कर लिया। देवता-गण उसके डर के मारे दर-दर भागते फिरते रहे और भागते-भागते उस दैत्य से अपने प्राण बचाने के निमित्त, दस सहस्र वर्ष पर्यन्त गिरि-कन्दराओं में छिपे रहे। उधर वह रक्त - बीज दैत्य शुम्भ - निशुम्भ के साथ त्रैलोक्य का सार्वभौम सम्राट् होकर निष्कण्टक धर्म-पूर्वक प्रजा-पालन करता रहा।

इस प्रकार दुःख तथा दैन्य से काल-यापन करते हुए, इन्द्र-प्रमुख देवता - गण श्रीब्रह्मा जी के निकट गए और उनसे अपना दुःख निवेदन किया। ब्रह्मा जी सब देवताओं को सज्जु लेकर, विष्णु भगवान् के पास रक्त - बीज के वध का उपाय पूछने गए। विष्णु भगवान् ने कहा कि ब्रह्मा जी के वर के कारण उसका वध असम्भव है क्योंकि ब्रह्मा जी ने उसको वर दिया है कि वह देव - दानव प्रभृति प्राणि-मात्र तथा योनि - मात्र से अबध्य रहेगा और उसके शरीर से रक्त के जितने बूँद भूमि में पतित होंगे, उतने ही और रक्त-बीज पैदा हो जाएंगे। अतएव मेरे विचार से उसका वध केवल परा - प्रकृति श्री जगदम्बा ही कर सकती हैं, क्योंकि हम देवता तथा अन्य जीव-मात्र सब उसके अंश हैं और वह स्वयं देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, गुह्यक मनुष्य, पिशाच, मृग प्रभृति कुछ भी नहीं है। वही परा महा-माया उस महा-असुर का वध करेंगी। अतएव शिव जी के निवास - स्थान कैलाश में मेरे साथ चलो। वहाँ उनकी स्तुति करें, जिससे प्रसन्न होकर वे उस महा-असुर को मारें।

इस प्रकार सम्मति करके देव-गण ब्रह्मा-विष्णु के साथ दिव्य केदार - मण्डल में, मन्दाकिनी के तट पर, सरस्वती नदी के उत्तम कूल में स्थित काली - तीर्थ में गए और रक्त - बीज के वध की इच्छा से परमात्मा की माया श्रीजगज्जननी की प्रार्थना करने लगे।

देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न होकर, महा-काल-प्रिया गिरीश - पत्नी ने प्रकट होकर देवताओं को आश्वासन दिया कि—'हे देवताओं, तुम अब उक्त असुर से मत डरो। मैं उस रक्त - बीज को अवसर

पर वध करूँगी। तुम निर्भय होकर अपने-अपने स्थानों को जाओ। इस स्थान पर (जहाँ तुमने मेरी स्तुति की है और मैं प्रकट हुई हूँ) जो कोई पूजा, स्नान, दान, स्तोत्र-पाठ इत्यादि करेंगे, उनकी सब अभिलाषाएँ मेरे प्रसाद से पूर्ण होंगी। यह क्षेत्र, जहाँ मैं तुमसे सन्तुष्ट और प्रसन्न हुई हूँ, 'काली-तीर्थ' नाम से ख्यात होगा और यह मुक्ति-दाता क्षेत्र भाग्य से ही प्राप्त हो सकेगा।'।

इस प्रकार जगदम्बिका से आश्वस्त होकर देवता अपने-अपने स्थानों पर गए। देवताओं ने विचार किया कि किसी प्रकार रक्त - बीज को उत्तेजित कर उससे देवी का अपराध करवाना चाहिए, जिससे वह कुपित होकर रक्तबीज का वध करें। ऐसा विचार कर देवताओं ने नारद जी को रक्त - बीज के पास भेजा। नारद मुनि रक्त - बीज की पुरी में गए, वहाँ दैत्यों ने उनका बड़े आदर तथा प्रेम से आतिथ्य करके उनसे पूछा कि—'हे मुनि महाराज, आपकी सब लोकों में अबोध गति है। आप बतलाइए कि हमारा नगर, राज्य तथा वैभव कैसा है? क्या त्रैलोक्य में इसके अतिरिक्त कोई उत्तम दूसरा स्थान है? क्या हमारे अतिरिक्त त्रैलोक्य में कोई दूसरा भी है, जिसके पास हमसे उत्तमोत्तर वैभव हो?'।

नारद जी ने उत्तर दिया कि—'मैं त्रैलोक्य में सर्वत्र विचरण करता हूँ, परन्तु मैंने ऐसा ऐश्वर्य किसी का नहीं पाया, जैसा तुम्हारा है। फिर भी इसमें कुछ कसर बाकी रह गई है। कैलाश पर्वत में एक शिव निवास करते हैं, जो समस्त शक्तियों द्वारा दुर्जेय हैं। वह स्थान त्रैलोक्य - दुर्लभ है। वहाँ एक-सहस्र-योजन-विस्तीर्ण कल्प-वृक्षों का वन है। वहाँ एक ऐसी तन्वङ्गी अबला विद्यमान है, जो त्रिलोकी की रत्न-स्वरूप है और उसी के माहात्म्य के कारण देव-दानव कोई भी महा-देव जी को विजय नहीं कर सकता। उसी की इच्छा से इस चराचर जगत् का निर्माण होता है।

इस प्रकार नारद जी के उकसाने पर रक्त - बीज ने त्रैलोक्य - मोहिनी स्त्री का रूप माया से धारण किया और शिव जी को छलने कैलाश पर्वत पर गया। शिव जी ने जब उस गिरिजा - रूपिणी माया-मयी नारी को देखा, तो वे किञ्चित् मोहाविष्ट हो गए। उसी समय पार्वती जी भी वहाँ आ गई, जिससे शिव जी कुछ द्विविधा में पड़ गए। विचार करने पर शिव जी जान गए कि यह रक्त - बीज दैत्य माया-मय रूप धारण करके आया है। उन्होंने क्रुद्ध होकर उसको शाप दिया कि तू पार्वती का रूप धर कर मुझे छलने आया है, इसलिए तुझे पार्वती ही वध करूँगी।

श्रीशिव जी के शाप को सुनकर रक्त-बीज उनका निरादर करके अपने पुर में आया और वहाँ उसने अपने साथी दैत्यों से मन्त्रणा करके श्रीपार्वती जी को हरण करने का निश्चय किया और श्रीपार्वती जी को लाने के लिए धूम्राक्ष, चण्ड-मुण्ड प्रभृति असुरों को स-सैन्य भेजा। उन असुरों ने रक्त - बीज की बहुत सी प्रशंसा करके श्रीभगवती के पास प्रस्ताव रक्खा कि वे दैत्य को पति रूप से वरण करें, अन्यथा बल-पूर्वक घसीट कर ले जाया जायगा।

यह सुनकर जगदम्बा अति-क्रुद्ध हुई और हुं-कार मात्र से उस असुर-सैन्य को उन्होंने उसी क्षण भस्म कर दिया। उस समय परा-भैरवी श्रीकालिका का बड़ा भयङ्कर रूप हो रहा था। उनके शरीर की धमनियाँ दीप्त हो रही थीं। काले अञ्जन के समान उनका वर्ण हो रहा था। वे महा-भयानक नाद कर रही थीं और अत्यन्त कराल उनका स्वरूप था। उनके हाथ में खट्वाङ्ग और कण्ठ में नर-मुण्डों की माला थी। एक हाथ से पकड़ - पकड़ कर हाथी तथा भैंसों को खा रही थीं, योगिनी - गण से वे आवृत्त होकर नृत्य कर रही थीं। जगदम्बा के उस असुर-सैन्य को भस्म कर देने पर वह असुर और भी सैन्य लेकर उनसे लड़ने आया और जगदम्बा कालिका ने घोर युद्ध करके समस्त असुर-वृन्द को नष्ट कर दिया।

और शुम्भ-निशुम्भ को मारकर रक्त-बीज तथा उसके रुधिर से पैदा हुए सब रक्त-बीजों का भक्षण कर लिया। इस प्रकार जगदम्बा की कृपा से फिर देव-गण अपने स्थानों को प्राप्त हुए।

काली-तीर्थ में देवताओं की आपत्ति दूर करने के लिए जगदम्बा प्रकट हुई और यहीं उन्होंने राक्षसों से युद्ध करके उनको मारा। तब से यह तीर्थ लोक में प्रसिद्ध है। यहाँ जगदम्बिका श्रीआद्या कालिका सर्वदा विराजमान हैं। काली-तीर्थ के माहात्म्य-प्रकरण में वर्णित है—‘मैं तुमसे सु-दुर्लभ माहात्म्य कहता हूँ। पूजन क्या, केवल स्मरण मात्र से ‘काली’ प्रत्यक्ष फल देनेवाली है। जो कोई मनुष्य भक्ति-भाव से कालिका का पूजन करता है, उसको प्रलयान्त-पर्यन्त रुद्र-लोक की प्राप्ति होती है।..... सरस्वती के नाना मुनि गणान्वित रम्य तट में नाना मुक्ति-दाता रम्य - तीर्थ हैं। यह परम गुह्य क्षेत्र है। यहाँ ब्रह्मा प्रभृति देवता - गण परम सिद्धियों को प्राप्त हुए। यहाँ इस तीर्थ में स्नान करके जो मनुष्य देवर्षि - पितरों का ‘तर्पण’ करता है, वह सारे चराचर जगत् को प्राप्त करता है और उसके पितरों को चौदह इन्द्रों के राज्य - काल - पर्यन्त तृप्ति होती है। जो इस तीर्थ में आनन्द तथा भक्ति - पूर्वक ‘स्नान’ करता है, वह ऋषियों को भी दुर्लभ परम स्थान में पहुँचता है। यदि कोई महा-पातकी भी इस तीर्थ में आकर भूमि-दान करे, तो वह सर्व - पापों से मुक्त होकर ब्रह्म - लीन हो जाता है। इस क्षेत्र में जिसका मरण होता है, उसकी गया-काशी करना व्यर्थ है। वह तो विष्णुआत्मा होकर मुक्त हो जाता है। उसका पुनर्जन्म हो ही नहीं सकता। ‘कालिका - क्षेत्र’ में जो महा-शिव-लिङ्ग प्रतिष्ठित है, वह ‘केदार’ से भी अधिक पुण्य फल देनेवाला है।

सिद्ध मुनि तथा इन्द्रादि देव-गण कलि-युग में पाप - नाशन करनेवाली महा - काली की पूजा करते हैं। कलि - युग में ‘काली’ के अतिरिक्त अन्य कोई मुक्ति - दाता नहीं है। ‘कालिका’ ही सर्वदा मनुष्यों को ‘भोग’ तथा ‘मोक्ष’ देनेवाली है। ‘काली-क्षेत्र’ में कालिका के स्थान से दो कोस की दूरी पर, पर्वत के शिखर पर रण - मण्डना देवी का स्थान है। यहाँ जाकर मनुष्य अनामय देवी - लोक को प्राप्त होता है। इस पर्वत में महा-काली छलाँग मारकर आकाश को उछली थीं और अपने दृढ़ करों से उन्होंने पृथ्वी का ताड़न किया था। अभी भी उस पर्वत पर उनके हाथों का निर्मल चिह्न दीखता है।

‘श्रीकाली - क्षेत्र’ की प्रधान - देवता श्रीदक्षिण - कालिका हैं। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ श्रीदक्षिण-कालिका का ‘यन्त्र’ है। कालिका की मढ़ैया में एक गड़ढा है। उसके अन्दर एक ताँबे का प्रस्थ उल्टा करके रक्खा हुआ है। गड़े का मुँह ताँबे की एक भारी चादर से बन्द है। यही श्रीदक्षिण-कालिका का यन्त्र बताया जाता है। ‘यन्त्र’ गुप्त है, उसे देखने की मनाही है। आश्विन के ‘नव-रात्र’ में श्रीदुर्गा-ष्टमी को यह ताँबे की चादर, अर्ध रात्रि के बाद चन्द्रमा के अस्त होने पर खोली जाती है, उस समय यहाँ पूजन तथा बलिदानादि होते हैं, परन्तु उजाला नहीं किया जाता। अन्य समयों में पूजन ताँबे की चादर के ऊपर ही होता है।

पहले यहाँ की यात्रा बड़ी कठिन थी, परन्तु अब रुद्र-प्रयाग तक सड़क बन जाने से सुगम हो गई है। इसमें सन्देह नहीं कि यह स्थान उत्तम सिद्ध-पीठ है और यहाँ यदि साधक के हृदय में भक्ति हो, तो शीघ्र सिद्धि-लाभ हो सकती है। ऐसा लेखक का अपना अनुभव है। इस स्थान की प्राकृतिक छट ही कुछ ऐसी अनुपम है कि यहाँ प्रवेश करते ही साधक का हृदय कुछ और ही हो जाता है। आशा है, साधक-गण, इस स्थान की यात्रा कर और यहाँ साधना करके लाभ उठाएँगे।



साधनमाला

[गताङ्क (मार्च, ६३) से आगे]

[भैरव-कुण्ड, विन्ध्याचल [मिर्जापुर-३० प्र०] के ब्रह्मीभूत स्वामी श्री अक्षोभ्यानन्द जी सरस्वती ने नेपाल से प्रस्तुत स्तोत्र की पाण्डुलिपि प्राप्त की थी। उनसे उनके शिष्य ८४ वर्षीय वयोवृद्ध ऋषि-कल्प पण्डित कृष्णानन्द जी मिश्र वैद्य [ग्राम ककरा दुबावल, जनपद प्रयागराज] ने इसे प्राप्त किया। पूज्य वैद्य जी की कृपा से यह दुर्लभ स्तोत्र पहले पहल ‘साधन-माला’ के अन्तर्गत १०१ वें क्रम पर प्रकाशित किया जा रहा है। १०० प्रयोग गत वर्ष की ‘चण्डी’ के अङ्कों में प्रकाशित हो चुके हैं। आशा है, साधक बन्धु इस अनूठे प्रयोगात्मक स्तोत्र से लाभान्वित होंगे।—सं०]

(१०१०)

श्रीमहा-विद्या-स्तोत्र

॥ सङ्कल्प ॥

ॐ तत्सत् अद्यतस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीय-प्रहराद्धं श्वेत-वराह-कल्पे जम्बू-द्वीपे भरत-खण्डे आर्या-वर्त-देशे अमुक-पुण्य-क्षेत्रे कलियुगे कलि-प्रथम-चरणे अमुक-सम्बत्सरे अमुक-मासे अमुक-पक्षे अमुक-तिथौ अमुक-वासरे अमुक-गोत्रोत्पत्तौ अमुक-नाम त्रिविध - दोषोपशमनार्थं सकलारिष्ट-ग्रह-जन्म-दुःख-ध्वंसन-पूर्वकं भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षस-ब्रह्म-राक्षस-वेताल तथा कुल-देवतायाः शान्त्यर्थं कष्ट-निवारणार्थं ज्वर-धि-जन्य-दुःख-व्याधि-कृमि-ध्वंसन-पूर्वकं महा-शान्ति-कामः श्रीमहा-विद्यायाः सकल-रसानुकूल महा-शान्तिक नाम स्तोत्र-पाठमहं करिष्ये। तेनैव स्तोत्रेण दश-दिन-पर्यन्तम् अहो-रात्र हवनमहं करिष्ये। ॐ नमो भगवते महा-विद्यायै नमः।

॥ विनियोग ॥

ओमस्य श्रीमहा-विद्या-मन्त्रस्य श्रीअघोरार्यमा ऋषिः। गायत्री-त्रिष्टुप्-जगती-छन्दांसि। परमात्मा श्री कालिका देवता। श्री महा - माहेश्वरी विद्या। माया बीजं। त्रिशक्ति - त्रिमुद्रा शक्तिः। श्री महा-विद्या - प्रीत्यर्थं (सम सकल-दुरित-क्षयार्थं, सकल- जन - वश्यार्थं, सकल - कार्य - सिद्धयर्थं, मोहनार्थं, मनोऽपित-कामना-सिद्धयर्थं, सकल - फल - प्राप्त्यर्थं, प्राप्त-संरक्षणार्थं, शीघ्र - सकल - कामना - सिद्धयर्थं सर्वाशा-परिपूरणार्थं, धन-धान्यान्न-वस्त्रालङ्कारादि-समृद्धयर्थं) जपे पाठे विनियोगः।

॥ ऋष्यादि-न्यास ॥

श्री अघोराय नमः शिरसि । गायत्री-त्रिष्टुप्-जगती-छन्दोभ्यः नमः मुखे । परमात्मा श्रीकालिका - देवतायै नमः हृदि । श्री महा-माहेश्वरी-विद्यायै नमः कण्ठे । माया - बीजाय नमः लिङ्गे । त्रि-शक्ति-त्रि-मुद्रा-शक्तये नमः नाभौ । श्री महा-विद्या-प्रीत्यर्थे जपे पाठे विनियोगाय नमः अञ्जलौ ।

॥ कर-न्यास ॥

अं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ऐं तर्जनीभ्यां नमः । ह्रीं मध्यमाभ्यां नमः । श्रीं अनामिकाभ्यां नमः । बलीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । महा - विद्यायै करतल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः ।

॥ अङ्गु-न्यास ॥

अं हृदयाय नमः । ऐं शिरसे स्वाहा । ह्रीं शिखायै वषट् । श्रीं वदचयोः हुं । बलीं नेत्र-त्रयाय वौषट् । महा-विद्यायै अस्त्राय फट् ।

॥ उत्कीलन-मन्त्र ॥

ॐ ऐं ह्रीं वाग्-वादिनी सर्व-मन्त्राणां सर्व-यन्त्राणामुत्कीलन-करी सर्व-सुख-मुखन-करी स्वाहा ।



॥ ध्यान ॥

पञ्च - वक्त्रां च लम्बोष्ठीं, नयन-त्रय-शोभिताम् ।

रक्त-दंष्ट्रां करालास्यां, कृष्णाजिन्मृग-रूपिणीम् ॥

रक्त-वस्त्रां दश - भुजामायुधैः परि - शोभिताम् ।

खड्गं च मुशलं शूलं, भल्लं वाणं च दक्षिणे ॥

धनुः पाशं च डमरुं, शक्तिं खेटं तथोत्तरे ।

विभ्राणां सिंह-पृष्ठस्थां, ध्यायेत् तां हृत्-शिरोरुहे ॥

आरुणीं वारुणीं चैव, सर्वोपद्रव - नाशिनीम् ।

उल्का - मुखीं रुद्र - जटीं, नाग-पृष्ठ-शिरोधरीम् ।

भगवती महा-विद्या के पाँच मुख हैं । प्रत्येक मुख में तीन नेत्र हैं और ओठ लम्बे हैं । रक्त-वर्ण की दाढ़ें हैं, जिनसे मुख भयानक हैं । काले मृग जैसा स्वरूप है । रक्त-वस्त्र धारण किए हैं । दस भुजाएँ हैं, जिनमें से दाहिने पाँच हाथों में—१ खड्ग, २ मुशल, ३ शूल, ४ भाला और ५ वाण लिए हैं । बाएँ पाँच हाथों में—१ धनुष, २ पाश, ३ डमरु, ४ शक्ति और ५ खेटक शोभायमान हैं । इस प्रकार की महा-विद्या देवी सिंह की पीठ पर आसीन हैं । इनका ध्यान हृदय-कमल पर करना चाहिए । ये उल्का के समान प्रदीप्त मुखवाली हैं । रुद्र-जटा-धारिणी हैं और इनके शिर पर नाग-पृष्ठ है । ये सभी उपद्रवों का नाश करनेवाली आरुणी-वारुणी हैं ।

॥ पूजा-मन्त्र ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कुल-कुण्ड-स्वामिनि ! स्वाहा । ॐ आत्म-रक्षां कुरु-कुरु, पर-विद्यां छिन्धि-छिन्धि पर-यन्त्रं स्फोटय-स्फोटय, ॐ कुण्ड-स्वामिनि ! स्वाहा ॥

॥ मूल-मन्त्र ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं महा-विद्यायै स्वाहा ।

उक्त 'मूल-मन्त्र' का १०८ जप करने के बाद 'माला- मन्त्र' का जप करना चाहिए । यथा—

ॐ ह्रौं हंसक्ष-मल्वय-वरा हंसक्षमल्वय-वरीं श्रीं श्रीं ह्रौं याचकः सर्वाराध्य सर्व-शुद्धनार्थं सर्व-गुरु स्वयं गुरु-नाथ हंसक्षमल्वय सं हंसक्ष-मल्वपरि हंसक्ष-मल्वय-परां श्रोशम्भु गुरु श्रीं ह्रौं हसौं ऐं क्लीं सोऽहं सौं श्रीं ह्रौं मूलादि-ब्रह्म-रन्ध्रान्तं विष-तनीयसोमुद्यदादित्य-रुचिरां स्मरेत् शुभ-शान्तये ।

ॐ महा-विद्यां प्रवक्ष्यामि, महा-देवेन निर्मितां । चिन्तितां किन्त-रूपेण, मात्रा हृदय-नन्दिनीं ॥ उत्तमां सर्व-विद्यां, सर्व - भूत - वश - करीं । सर्व-पाप-क्षय-करीं, सर्व-शत्रु-निवारिणीम् ॥

॥ अथ होम-मन्त्र ॥

ॐ ह्रां हंसः कुल-कार्य-करीं, कुल-करीं, गोत्र-करीं, पुत्र-करीं, पुष्टि-करीं, तुष्टि-करीं, धन - करीं, धान्य - करीं, वृद्धि-करीं, उत्साह-बल-वर्धनीं, भूतानां प्रभञ्जिनीं, शोषिणीं, मोहिनीं, द्राविणीं, दुष्ट-यन्त्र-प्रभञ्जिनीं, पुत्र-पौत्रादि-वर्द्धिनीं, आयुरारोग्यैश्वर्याभिर्वाधनीं, सर्व-भूत-स्तम्भिनीं, सर्वाकर्षिणीं, सर्व-लोक-वश-करीं, सर्व-जन-वश-करीं, सर्व-यन्त्र-प्रमोदिनीं, एकाहिकं, द्वायाहिकं, त्रयाहिकं, चातुर्थिकं, पञ्चाहिकं, षष्ठ्याहिकं, सप्ताहिकं, अष्टाहिकं, अर्ध-मासिकं, षाण्मासिकं, साम्बत्सारिकं, वारिकं, पैत्तिकं, श्लेष्मिकं, सान्निपातिकम्, कुष्ठ-रोग-जठर - रोग - मुख - रोग-प्रमेह-रोग-शुक्र-विशि-भयं विस्फोटकादि - विनाशनाय स्वाहा । ॐ वेतालादि-ज्वर, मुहूर्त-ज्वरादि वस-ज्वर रात्रौ-ज्वर, सन्ध्या - ज्वर, सन्तत-ज्वर, राक्षस-ज्वर, अग्नि-ज्वर, प्रस्वेद-ज्वर, विषम - ज्वर, तीव्र - ज्वर, माया-प्रयोगाभिचारिक-ज्वर, दृष्टि-ज्वर, पाण्डु - ज्वर, अस्मादादि-ज्वर-प्रयोगाद्धि विनाशनाय स्वाहा । ॐ ब्रह्माण्ड-शूल, शिर-शूल, शिरऽर्ध-शूल, अक्षि-शूल, घ्राण-शूल, कर्ण-शूल, दन्त-शूल, गल-शूल, गण्ड-शूल, हृदय-शूल, कुक्षि-शूल, पृष्ठ-शूल, कटि-शूल, नाभि-शूल, उदर - शूल, हस्त-शूल, उरु-शूल, पाद-शूल, पादार्ध-शूल, सर्व-शूल-विनाशनाय स्वाहा ।

ॐ सर्व-व्याधि-विनाशनाय स्वाहा, सर्व-शत्रु-विनाशनाय स्वाहा । सर्व-विस्फोटक-विनाशनाय स्वाहा । ॐ आत्म-रक्षा, परमात्म-रक्षा, मित्र-रक्षा, अग्नि-रक्षा, प्रत्यग्नि-रक्षा

पराग्नि-वातो-रक्षा, चौर-रक्षा—तेषां सकलं ब्रह्मामि नमः स्वाहा । ॐ हर-देहिनीं नमः स्वाहा । ॐ इन्द्र - देहिनीं नमः स्वाहा । ॐ स्व-स्व-ब्रह्माण्ड-दण्डं विश्रामय, विश्रामय, विष्णु-दण्डम् । ॐ ज्वर-ज्वर, ईश्वर-कुमार-दण्डम्, ॐ प्रहर-प्रहरानु-दण्डम्, हिलि-मिलि माया-दण्डम्, नित्यं नित्यं विश्रामय । विश्राम-वारुणी, शूलिनी, गारुडी रक्ष रक्ष स्वाहा ।

ॐ नदीनां पुलिने जाता, पर्वते वा वनान्तरे । रुद्रस्य हृदये जाता, विद्याऽहं काम-
रूपिणी स्वाहा । ॐ ज्वल ज्वल देहस्य देहेन सकल-लोह-पिङ्गली-कठिन-प्रेरिका, किलि,
किलि, किलिकं महा-दण्डम् कुमार-दण्डम्, नृत्य नृत्य विष्णु-वन्दितम्, हंसिनीं शङ्खिनीं,
चक्रिणीं, गदिनीं, शूलिनीं रक्ष रक्ष स्वाहा । ॐ नमो नमो ॐ नमो नमो स्वाहा । ॐ

ॐ हां स्वाहा, ॐ हां हां स्वाहा । ॐ हीं स्वाहा, ॐ हीं हीं स्वाहा । ॐ हूं स्वाहा, ॐ हूं हूं स्वाहा । ॐ हें स्वाहा, ॐ हें हें स्वाहा । ॐ हौं स्वाहा, ॐ हौं हौं स्वाहा । ॐ हः स्वाहा, ॐ हः हः स्वाहा ।

ॐ क्रां स्वाहा, ॐ क्रां क्रां स्वाहा । ॐ क्रीं स्वाहा, ॐ क्रीं क्रीं स्वाहा । ॐ कूं
स्वाहा, ॐ कूं कूं स्वाहा । ॐ क्रें स्वाहा, ॐ क्रें क्रें स्वाहा । ॐ क्रैं स्वाहा, ॐ क्रैं क्रैं
स्वाहा । ॐ क्रों स्वाहा, ॐ क्रों क्रों स्वाहा । ॐ क्रौं स्वाहा, ॐ क्रौं क्रौं स्वाहा । ॐ क्रं
स्वाहा, ॐ क्रं क्रं स्वाहा । ॐ क्रः स्वाहा, ॐ क्रः क्रः स्वाहा ।

ॐ कं स्वाहा, ॐ कं कं स्वाहा । ॐ खं स्वाहा, ॐ खं खं स्वाहा । ॐ गं स्वाहा, ॐ गं गं स्वाहा । ॐ घं स्वाहा, ॐ घं घं स्वाहा । ॐ ङं स्वाहा, ॐ ङं ङं स्वाहा । ॐ चं स्वाहा, ॐ चं चं स्वाहा । ॐ छं स्वाहा, ॐ छं छं स्वाहा । ॐ जं स्वाहा, ॐ जं जं स्वाहा । ॐ झं स्वाहा, ॐ झं झं स्वाहा । ॐ ञं स्वाहा, ॐ ञं ञं स्वाहा ।

ॐ तं स्वाहा, ॐ तं तं स्वाहा । ॐ ठं स्वाहा, ॐ ठं ठं स्वाहा । ॐ डं स्वाहा,
ॐ डं डं स्वाहा । ॐ ढं स्वाहा, ॐ ढं ढं स्वाहा । ॐ णं स्वाहा, ॐ णं णं स्वाहा । ॐ तं
स्वाहा, ॐ तं तं स्वाहा । ॐ थं स्वाहा, ॐ थं थं स्वाहा । ॐ दं स्वाहा, ॐ दं दं स्वाहा ।
ॐ धं स्वाहा, ॐ धं धं स्वाहा । ॐ नं स्वाहा, ॐ नं नं स्वाहा ।

ॐ पं स्वाहा, ॐ पं पं स्वाहा । ॐ फं स्वाहा, ॐ फं फं स्वाहा । ॐ बं स्वाहा,
बं बं स्वाहा । ॐ भं स्वाहा, ॐ भं भं स्वाहा । ॐ मं स्वाहा, ॐ मं मं स्वाहा । ॐ यं
स्वाहा, ॐ यं यं स्वाहा । ॐ रं स्वाहा, ॐ रं रं स्वाहा । ॐ लं स्वाहा, ॐ लं लं स्वाहा ।
ॐ वं स्वाहा, ॐ वं वं स्वाहा ।

ॐ शं स्वाहा, ॐ शं शं स्वाहा । ॐ षं स्वाहा, ॐ षं षं स्वाहा । ॐ सं स्वाहा,
ॐ सं सं स्वाहा । ॐ हं स्वाहा, ॐ हं हं स्वाहा । ॐ क्षं स्वाहा, ॐ क्षं क्षं स्वाहा ।
ॐ त्रं स्वाहा, ॐ त्रं त्रं स्वाहा । ॐ जं स्वाहा, ॐ जं जं स्वाहा ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा । ॐ स्वः स्वाहा,
ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा ।

ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा । ॐ विष्णवे नमः स्वाहा । ॐ रुं रुद्राय नमः स्वाहा ।
ॐ रुद्रादित्याय नमः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय सर्व - भूतानां सर्व - विषाणां सर्व-
बुष्टानां निग्रहं कुरु-कुरु स्वाहा । ॐ आदित्याय नमः स्वाहा । ॐ सोमाय नमः स्वाहा ।
ॐ अङ्गारकाय नमः स्वाहा । ॐ बुधाय नमः स्वाहा । ॐ वृहस्पतये नमः स्वाहा । ॐ
शुक्राय नमः स्वाहा । ॐ शनैश्चराय नमः स्वाहा । ॐ राहवे नमः स्वाहा । ॐ केतवे नमः
स्वाहा ।

ॐ श्लेषाय नमः स्वाहा । ॐ दुर्गे महा-शान्तिक-पतङ्ग-भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षस-
ब्रह्म-राक्षस-सर्व-वेताल-सर्व-वृश्चिक-भय-विनाशनाय स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय
स्वाहा । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः ह्रं फट् स्वाहा । ॐ क्रां क्रीं क्रूं क्रें क्रों
क्रौं क्रौं क्रं क्रः स्वाहा । ॐ शिं शिवाय नमः स्वाहा ।

ॐ सूं सूर्याय नमः स्वाहा । ॐ सों सोमाय नमः स्वाहा । ॐ मं मङ्गलाय नमः
स्वाहा । ॐ वुं बुधाय नमः स्वाहा । ॐ वूं वृहस्पतये नमः स्वाहा । ॐ शुं शुक्राय नमः
स्वाहा । ॐ शं शनैश्चराय नमः स्वाहा । ॐ रां राहवे नमः स्वाहा । ॐ कें केतवे नमः
स्वाहा ।

ॐ महा-शान्तिक-भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षस-ब्रह्म-राक्षस-सर्व-वेताल-सर्व-वृश्चिक-भय-
विनाशनाय स्वाहा ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेशाय
स्वाहा । ॐ नमो दुर्गाय स्वाहा । ॐ सिं सिंह-शार्ङ्ग-गजेन्द्र-ग्रह-सर्व-व्याघ्रादि-मृगादि-
बध्नामि नमः स्वाहा ।

ॐ वां बाहुं बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ नें नेत्रं बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ श्रौं
श्रोत्रं बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ पां पादं बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ आं आंसां बध्नामि
नमः स्वाहा । ॐ स्रं सर्वं नमः स्वाहा । ॐ वं बन्धनं कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ शत-योजन-विस्तीर्णं रुद्रो वदति मण्डलम् । तद् बन्धनं कुरु कुरु स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा । ॐ भूत-पिशाचान्, असुर-ग्रहान्, डाकिनी-ग्रहान्, अपस्मार-ग्रहान्, कामलक-ग्रहान्, भूत - ग्रहान्, प्रेत - ग्रहान्, कस्मल - ग्रहान्, अति-विश्वास-ग्रहान् नाशय नाशय स्वाहा ।

ॐ ग्लां ग्लीं ग्लूं ग्लें ग्लैं, ग्लों ग्लौं ग्लं ग्लः गणपतये स्वाहा । ॐ क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षौं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्षेत्र - पालाय स्वाहा । ॐ स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं स्त्रें स्त्रौं स्त्रों स्त्रं स्त्रः सूर्याय स्वाहा । ॐ गं गन्धर्वाय स्वाहा । ॐ यं यक्षाय स्वाहा । ॐ ह्रीं तक्षक-आस्तीक-कर्कोटक-द्रावलिक-शङ्ख-पद्मक-कुलिक-महा-शङ्ख-चूड-वासुकि-नाग-कुले श्रीं श्रीं त्वौं हौं हूं फट् स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं हनुमते राम-दूताय लङ्का - विध्वंसनाय अञ्जनी-गर्भ-सम्भूताय त्रीन्-त्रिंशत्-शाकिनी-साय-शाकिनी-डाकिनी-यक्षिणी-विध्वंसनाय भूत-प्रेत-पिशाच-मर्दनाय, किलि किलि, बुबुकारेण विभीषणे, रक्षेशाय, ह्रीं श्रीं ग्लौं हौं हूं फट् स्वाहा । ॐ नमो हनुमते महा-बल - पराक्रमाय, मम परस्य च चतुर्वर्ण-भूत-प्रेत-पिशाच-शाकिनी-डाकिनी-यक्षिणी-पूतना-मारिका-महा-मारी-कृत्या-यक्ष-राक्षस-भैरवीं, वेताल-ग्रह-ब्रह्म-ग्रह-राक्षस - आदित्यान् कुवा वीक्षणेन हन हन, जृम्भय जृम्भय, निराशय निराशय, वारय वारय, बन्धय बन्धय, नुद नुद, धुन धुन, मां रक्ष रक्ष, महा-माहेश्वर, रुद्रावताराय हां हां हां, घें घें घें हूं फट् स्वाहा ।

ॐ ऐं श्रीं हां ह्रीं हूं स्फ्रै, ह्रस्रौ ह्रस्फ्रै ह्रस्रौ द्रौ ॐ हनुमते मम क्षय-कुष्ठ-गण्ड-माला-स्फोटक-क्षत-ज्वर-एकाहिकं-द्व्याहिकं-त्र्याहिकं-चातुर्थिकं-सम्भव - ज्वर-सात्रिपातिक-ज्वर-भूत-ज्वर-मन्त्र-ज्वर-शूल-भगन्दर-मूत्र-कृच्छ्र-कपाल-कर्ण-शूल-अक्षि-शूल-उदर-शूल-हस्त-शूल-पाद-शूल-दित-सर्वान् व्याधीन् क्षणेन भिन्धि भिन्धि, छिन्धि छिन्धि, नाशय नाशय, निष्कृन्तय निष्कृन्तय, छेदय छेदय, भेदय भेदय वीर हनुमान ! हां हां हूं हूं घें घें ह्रीं ह्रीं हूं हूं फट् स्वाहा ।

ॐ ऐं ह्रीं क्रां कौं सुग्रीवाय वानर-राजाधिराजाय किलि बुबु-कारेण, हिलि हिलि, मिलि मिलि, शाकिनी-डाकिनी-यक्षिणी-भूत-प्रेत-पिशाचान् प्रणाशय प्रणाशय, सुग्रीव वीर ! छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि, सिन्धि सिन्धि, त्रोटय त्रोटय, त्राटय त्राटय, सर्व-ग्रहान् हन हन, पच पच, आग्नय आग्नय । ॐ ऐं ह्रीं ह्रीं क्रीं ह्रीं भूं स्भूं हूं हूं फट् स्वाहा ।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं ऐं सकलेश्वरि, सुरासुर-वन्दिते, श्रीत्रिपुरे ! ऐं ह्रीं कूं कूं हूं फट् स्वाहा । ॐ रक्त-चामुण्डे, नर-कपाले उल्कोपरि परिवारे श्मशान-प्रिये ! सर्व-सकल-भक्ष-रुधिर-मांस-भोजन-प्रिये ! सिद्ध-विद्याधर-वन्दित-चरणे ! असुरासुर-गण-सेविते ! दहन-पुरन्दरे ! विष्णु-स्तुते ! विश्वेश्वरि, पूजिते, त्रैलोक्यादि-आधार-मूले ! विश्व-जननि, आनन्द-स्वरूपिणि, विश्व-सृष्टि-स्वरूपे, महा-विद्ये ! भैरव-रूपिणि, स्वर्ग-मृत्यु-पाताल-विनाशिनि, कल्पे, रुद्र-कुक्षि, विनिर्गत-शरीरे, षोडश-कला-परिपूर्ण, दानव-स्वरूपेण दश - दिशि इन्द्र-हृच्छन्दे । ऐं ह्रीं अस्मिन् मण्डले प्रवेशय प्रवेशय, शत्रु-मुखं स्तम्भय स्तम्भय, अन्य भूतं भक्षय भक्षय, अरि-सैन्यं विध्वंसय विध्वंसय, ब्रह्म-राक्षसान् उत्सादय उत्सादय, पर-विद्यां निवारय निवारय, कुयन्त्रं भञ्जय भञ्जय, ज्वरं नाशय नाशय, विषं निर्विषं कुरु कुरु, पर-सङ्कटं दह दह, पच पच, मथ मथ, मर्दय मर्दय, सर्व-दुष्ट-जनं भक्षय भक्षय, मम मनोर-थान् पूरय पूरय, अतीतानां गत-वार्त्तां वर्तमानं कथय कथय, ऐं ह्रीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि, सिन्धि सिन्धि, त्रोटय त्रोटय, सर्व-ग्रहान् शक्ति-शत्रून् भस्मी कुरु कुरु, इन्द्र-वज्रेण, ब्रह्म-पातेन, बन्ध बन्ध, रुद्र-शालेन छेदय छेदय, ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं ग्लौं स्वीं श्रीं हूं फट् स्वाहा ।

ॐ हरिभ्यां नमः स्वाहा । ॐ हां ह्रीं हूं ह्रें ह्रैं ह्रीं ह्रौं ह्रं ह्रः हूं फट् स्वाहा । ॐ क्रां क्रीं कूं क्रें क्रैं क्रौं क्रौं क्रं क्रः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गाय स्वाहा । ॐ गन्धाय नमः स्वाहा । ॐ गन्ध - पादाय नमः स्वाहा । ॐ पञ्चोत्तर-शत-कोटि-सहस्र-गजान् बन्ध बन्ध, शान्ति कुरु कुरु, भूत-प्रेत-पिशाच-शाकिनी-डाकिनी-यक्षिणी-कूष्माण्ड-वासिनी चातु-थिक-चौर-राजा-दुष्ट-पुरुषादीन् तेषां दिशां बध्नामि, पातालं बध्नामि, अन्तरिक्षं बध्नामि, घ्राणं बध्नामि, भ्रू बध्नामि, श्रोत्रं बध्नामि, मुखं बध्नामि, वाचं बध्नामि, जिह्वां बध्नामि, शब्दं बध्नामि, हृदयं बध्नामि, पञ्चाशत्-कोटि-सहस्रान्त-योजन-विस्तीर्णो रुद्रो वदति मण्डलं । तस्य श्रीरुद्र - मण्डलं बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल, माक्रम्य माक्रम्य स्वाहा ।

ॐ हां ह्रीं हूं ह्रें ह्रैं ह्रीं ह्रौं ह्रं ह्रः हूं फट् स्वाहा । ॐ क्रां क्रीं कूं क्रें क्रैं क्रौं क्रौं क्रं क्रः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गाय स्वाहा ।

ॐ ऐन्द्र-दिशायां ऐरावतारूढं वज्र - हस्तं परिवार-सहितं, दिग्-देवाधि-पतिमैन्द्र-मण्डलं बध्नामि नमः स्वाहा । इन्द्र-मण्डलं बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल, माक्रम्य माक्रम्य स्वाहा । ॐ हां हीं हूं हें हैं हों हौं हं हः हूं फट् स्वाहा । ॐ कां कीं कूं कें कैं कों कौं कं कः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ अग्नि-दिशायां अजारूढं शक्ति-सहितं परिवार-सहितं दिग् - देवाधिपते अग्नि-मण्डलं बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ अग्नि - मण्डलं बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल, माक्रम्य माक्रम्य स्वाहा । ॐ हां हीं हूं हें हैं हों हौं हं हः हूं फट् स्वाहा । ॐ कां कीं कूं कें कैं कों कौं कं कः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ दक्षिण-दिशायां महिषारूढं दण्ड - हस्तं परिवार-सहितं दिग्-देवाधि-पति यम-मण्डलं बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल, माक्रम्य माक्रम्य स्वाहा । ॐ हां हीं हूं हें हैं हों हौं हं हः हूं फट् स्वाहा । ॐ कां कीं कूं कें कैं कों कौं कं कः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ नैऋत्य-दिशायां प्रेतारूढं खड्ग-हस्तं परिवार-सहितं दिग्-देवाधि-पति निऋति-मण्डलं बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ निऋति-मण्डलं बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल, माक्रम्य माक्रम्य स्वाहा । ॐ हां हीं हूं हें हैं हों हौं हं हः हूं फट् स्वाहा । ॐ कां कीं कूं कें कैं कों कौं कं कः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ पश्चिम-दिशायां मन्त्रारूढं पाश-हस्तं परिवार-सहितं दिग्-देवाधि-पति वरुण-मण्डलं बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ वरुण-मण्डलं बन्ध-बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल, माक्रम्यर, माक्रम्य स्वाहा । ॐ हां हीं हूं हें हैं हों हौं हं हः हूं फट् स्वाहा । ॐ कां कीं कूं कें कैं कों कौं कं कः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ वायु-दिशायां मृगारूढं धनुर्हस्तं परिवार-सहितं दिग्-देवाधि-पति वायु-मण्डलं बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ वायु-मण्डलं बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल, माक्रम्य

माक्रम्य स्वाहा । ॐ हां हीं हूं हें हौं हौं हं हः हूं फट् स्वाहा । ॐ क्रां क्रीं कूं
क्रें क्रें क्रीं क्रीं कं कः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । नमो भैरवाय स्वाहा ।
ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ उत्तर-दिशायां नारारूढं गदा-हस्तं परिवार-सहितं दिग्-देवाधिपति कुबेर-मण्डलं
बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल, माक्रम्य माक्रम्य स्वाहा । ॐ हां हीं हूं हें हौं हौं हं हः हूं फट् स्वाहा ।

ॐ क्रां क्रीं कूं क्रें क्रें क्रीं क्रीं कं कः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा ।
ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ ईशान-दिशायां वृषभारूढं त्रिशूल-हस्तं परिवार-सहितं दिग्-देवाधि-पति ईशान-
मण्डलं बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ ईशान-मण्डलं बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल,
माक्रम्य, माक्रम्य स्वाहा । ॐ हां हीं हूं हें हौं हौं हं हः हूं फट् स्वाहा ।
ॐ क्रां क्रीं कूं क्रें क्रें क्रीं क्रीं कं कः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो
भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ अन्तरिक्ष-दिशायां लोष्ठ-नागारूढं शूल-हस्तं परिवार-सहितं दिग्-देवाधि-पति
कालाग्नि-रुद्र-मण्डलं बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ कालाग्नि-रुद्र-मण्डलं बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष,
माचल माचल, माक्रम्य माक्रम्य स्वाहा । ॐ हां हीं हूं हें हौं हौं हं हः हूं फट्
स्वाहा । ॐ क्रां क्रीं कूं क्रें क्रें क्रीं क्रीं कं कः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा ।
ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ विष्णु-दिशायां गरुडारूढं शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-हस्तं परिवार-सहितं, दिग्-देवाधि-पति
विष्णु-मण्डलं बध्नामि नमः स्वाहा । विष्णु-मण्डलं बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल,
माक्रम्य माक्रम्य स्वाहा । ॐ हां हीं हूं हें हौं हौं हं हः हूं फट् स्वाहा ।
ॐ क्रां क्रीं कूं क्रें क्रें क्रीं क्रीं कं कः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय
स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ ब्रह्माणो दिशायां हंसारूढं ब्रह्मास्त्र-हस्तं परिवार-सहितं दिग् - देवाधि-पति
ब्रह्मा-मण्डलं बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ ब्रह्मा-मण्डलं बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल,
माक्रम्य माक्रम्य स्वाहा । ॐ हां हीं हूं हें हौं हौं हं हः हूं फट् स्वाहा । ॐ
क्रां क्रीं कूं क्रें क्रें क्रीं क्रीं कं कः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैर-
वाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ अधो-दिशायां क्रूनारूढं लोष्ठ-भागं क्रूं-परिवार-सहितं दिग्-देवाधि-पति पाताल-मण्डलं बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ पाताल-मण्डलं बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल, माक्रम्य माक्रम्य स्वाहा । ॐ हां हीं हूं हं हें हों हौं हं हः हं फट् स्वाहा । ॐ क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रों क्रं क्रः स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा । ॐ महा-शान्तिक-भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षस-ब्रह्म-राक्षस सर्प-वेताल-वृश्चिक-भय-विनाशनाय स्वाहा ।

ॐ पूर्व-दिशायां वज्रको नाम राक्षस स-दारस्य वज्रकस्याष्टादश-कोटि-सहस्रस्य पिशाचस्य दिशो बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ अग्नि-दिशायां अग्नि-ज्वालको नाम राक्षसस्याग्नि-ज्वालस्याष्टाष्टक-दश-कोटि-सहस्रस्य पिशाचस्य दिशां बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ दक्षिण-दिशायां पिङ्गलिको नाम राक्षसस्तस्य पिङ्गलिकस्याष्टादश-कोटि-सहस्रस्य पिशाचस्य दिशां बध्नामि नमः स्वाहा ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ निऋति-दिशायां मारीचिको नाम राक्षसस्तस्य मरीचिकस्याष्टादश-कोटि-सहस्रस्य पिशाचस्य दिशां बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ पश्चिम-दिशायां मकरो नाम राक्षसस्तस्य मकरस्याष्टादश-कोटि-सहस्रस्य पिशाचस्य दिशां बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ नमो वायव्य-दिशायां कूष्माण्डको नाम राक्षसस्तस्य कूष्माण्डकस्याष्टादश-कोटि-सहस्रस्य पिशाचस्य दिशां बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ हिमवन्तोत्तरस्य दिशायां महा-भीमो नाम राक्षसस्तस्य महा-भीमस्याष्टादश-कोटि-सहस्रस्य पिशाचस्य दिशां बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो

भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ ईशान-दिशायां भैरवो नाम राक्षसस्तस्य भैरवस्याष्टादश कोटि-सहस्रस्य पिशाचस्य दिशां बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ अन्तरिक्ष-दिशायां मन्त्र-रूपो नाम राक्षसस्तस्यान्तरूपस्याष्टादश-कोटि-सहस्रस्य पिशाचस्य दिशां बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ ब्रह्माणो दिशायां ब्रह्म-स्वरूपो नाम राक्षसस्तस्य ब्रह्म-स्वरूपस्याष्टादश-कोटि-सहस्रस्य पिशाचस्य दिशां बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ ऊर्ध्व-दिशायां खेचरिको नाम राक्षसस्तस्य खेचरिकस्याष्टादश-कोटि-सहस्रस्य पिशाचस्य दिशां बध्नामि नमः स्वाहा । ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा ।

ॐ सर्वतो-दिशायां गरुडारूढं शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-हस्तेन श्रीनृसिंह-वन्दित बन्ध बन्ध, रक्ष रक्ष, माचल माचल, माक्रम्य माक्रम्य, कुरु कुरु फट् स्वाहा । ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा ।

ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा । ॐ महा-शान्तिक-भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षस-ब्रह्म-राक्षस-सर्व-वेताल-सर्व-वृश्चिक-भय-विनाशाय स्वाहा ।

ॐ शिखां मे रक्षतु ब्रह्माणो ॐ हां ह्रीं हूं ह्रें ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः हूं फट् स्वाहा ।

ॐ शिरो-रोगे रक्षतु मातेश्वरी ॐ हां ह्रीं व्रीं क्लीं क्षौं धूं हूं फट् स्वाहा ।

ॐ कण्ठं मे रक्षतु वैष्णवी ॐ हां ह्रीं व्रीं क्लीं क्षौं धूं हूं फट् स्वाहा ।

ॐ भुजौ मे रक्षतु योगेश्वरी ॐ हां ह्रीं व्रीं क्लीं क्षौं धूं हूं फट् स्वाहा ।

ॐ कुक्षौ मे रक्षतु नव - दुर्गा ॐ हां ह्रीं व्रीं क्लीं क्षौं धूं हूं फट् स्वाहा ।

ॐ नाभौ मे रक्षतु वाराही ॐ हां ह्रीं व्रीं क्लीं क्षौं धूं हूं फट् स्वाहा ।

ॐ गुदं मे रक्षतु चामुण्डा ॐ ह्रां ह्रीं व्रीं क्लीं क्षौं धूं हूं फट् स्वाहा ।

ॐ जङ्घे मे रक्षतु भैरवी ॐ ह्रां ह्रीं व्रीं क्लीं क्षौं धूं हूं फट् स्वाहा ।

ॐ पादौ मे रक्षतु विनायकी ॐ ह्रां ह्रीं व्रीं क्लीं क्षौं धूं हूं फट् स्वाहा ।

ॐ सर्वतो रक्षतु नारसिंही ॐ ह्रां ह्रीं व्रीं क्लीं क्षौं धूं हूं फट् स्वाहा ।

ॐ अस्त्राय फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय स्वाहा । ॐ नमो भैरवाय स्वाहा । ॐ नमो गणेश्वराय स्वाहा । ॐ नमो दुर्गायै स्वाहा । ॐ महा-शान्तिक-भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षस-ब्रह्म-राक्षस-सर्व-वेताल-सर्प-वृश्चिक-भय-विनाशनाय स्वाहा ।

ॐ परिणामे महा-विद्या महा-देवस्य सन्निधौ । एक-विंशति-रात्रेण जपित्वा सिद्धिमाप्नुयात् । यदि न सिद्धयते वापि रुद्रो वै ब्रह्माहा भवेत् । पठित्वा यस्तु न पठेत् एतदा ब्रह्माहा भवेत् । स्त्रियो वा पुरुषो वापि पापं भस्म समाचरेत् । पठेत् वा पाठयेत् वापि सर्व-कार्येषु सर्वदा । दुष्टानां मारणं चैव साधकानां सुखावहम् । सर्व-कार्येषु सिद्धिं स्मात्, शान्ति-कर्म विशेषतः । माहेश्वरो महा-विद्या महा-देवेन निर्मिता । चकेश्वरी शिवा शान्ता शान्तिदा भवति ध्रुवम् । जपेन हरते शत्रून्, जपेन सिद्धि-भाग् भवेत् । द्रावणे स्तम्भने चैव, मारणे मोहने तथा । सर्व-कार्येषु सिद्धिं स्यात्, शान्ति-कर्म विशेषतः ।

॥ इति महा-विद्या सम्पूर्णं शुभम् नमः ॥

महा-विद्या-हवन-विधि

भूर्ज-पत्रे त्विदं यन्त्रं, लिखेत् गोरोचनेन च ।

वितस्ति-मात्रे भूमौ च, निखनेत् तु प्रयत्नतः ॥

तदूर्ध्वं वेदिकां कृत्वा, अग्नि-स्थापनं यथा-विधिः ।

सर्व-कार्येषु कर्तव्यं, होम-मन्त्रो यथा-विधि ॥

भोज-पत्र पर गोरोचन या चन्दन अथवा दोनों को मिलाकर उससे अमार को लेखनी द्वारा चौसठ वर्गों का चतुरस्र लिखे । प्रत्येक वर्ग के मध्य में 'ह्रीं' बीज लिखे । इस यन्त्र को हवन-वेदी के नीचे इस प्रकार गाड़ दे कि वह जलने न पाए । इसके लिए यह ध्यान रखे कि 'यन्त्र' से डेढ़ हाथ के ऊपर हवन-वेदी रहे ।

होमान्ते एतद् मन्त्रमष्टोत्तर-शतं जपेत् भूत-शान्तौ, ग्रह-शान्तौ, ज्वर-शान्तौ—
विशेषतः षष्ठी त्री-हवनं वृत्रे पाठयेत् सर्व-सिद्धिदम्—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं त्रिपुरे महा-विद्ये अमुकं अमुकीं वा आकर्षय स्वाहा ।

॥ महा-विद्या हवन-विधि ॥

शर्करा, घृत, खाण्डनि, हविष्यं, गुग्गुलं तथा पञ्चमेवा । मधुं चैव लवङ्गं, लायचि तथा पूगी-फलं च ताम्बूलं, तण्डुलाक्षतमेव च । नारिकेलं च पुष्पं च दुकूलं पद्ममेव च । बद्ध-पुष्पं रक्त-पुष्पं च धूप-दीपकं तथा नैवेद्यं चैव ताम्बूलं दक्षिणा स्वर्णमेव च । अर्कः पलाशः खदिरः अपामार्गोऽथ पिप्पलः । औदुम्बर-शमी-दूर्वा-कुशां च समिधः क्रमात् ग्रह-प्रेतये समिधः ।

॥ महा-विद्या-दीप-मन्त्र ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं दीप-स्वरूपे, महा-विद्ये, प्रचण्ड-पराक्रमे, सर्व-भूत-प्रभञ्जिनि, सर्व-दुष्ट-ग्रह-द्राविणि, पर-यन्त्र-पर-तन्त्र-पर-कृत-पर-विद्या-प्रभञ्जिनि ! इदं दीपं गृह्ण गृह्ण मम शत्रून् मर्दय मर्दय स्वाहा ।

॥ महा-विद्या-स्तव-पुरश्चरण-विधि ॥

॥ 'शिव-ताण्डव-तन्त्रे' ॥

भूत-प्रेत-पिशाचानां, डाकिन्यां ब्रह्म - राक्षसाम् ।

पठेत् सप्त - रात्रिं तु, होमं कृत्वा त्रयायुतम् ॥

३०,००० साकल्यं (हवन-सामग्री) पायसश्चैव कटु-तैलं च सर्षपम् ।

त्रि-पाठं प्रत्यहं कुर्यात्, एक-विंशति - दिनानि च ।

द्वि-षष्ठि - पाठ-मात्रेण, सर्वार्थ - सिद्धिदं भवेत् ॥

दशांशं हवनं कुर्यात्, दशांशं चैव तर्पणम् ।

दशांशं मार्जनं चैव, दशांशं द्विज - भोजनम् ॥

दशांशं दक्षिणा देया, कार्य - सिद्धिर्न संशयः ।

॥ 'रुद्र-यामले' दश-रात्रौ विधिस्तथा ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि, हवनं कार्यमुत्तमम् ।

स्तम्भने रक्त - पुष्पाणि, कार्य-सिद्धिस्तु जायते ॥

मारणे च सुरा मांसं, सद्यो वाति यमालयम् ।

दधि - होमं विग्रहे चैव, उच्चाटने रुधिरस्तथा ॥

ग्रह-शान्तौ पयः पक्वान्नं, ज्वर-शान्तौ च चन्दनम् ।

रोग-शान्तौ तथा दुग्धं, भूमि-कामे च पायसम् ॥

ब्रह्म - भूत - पिशाचेभ्यो, ग्रहेभ्यो क्लेश-शान्तये ।

रोगादि-शान्ति-कर्मणि, गृह - मध्ये तु स्थापयेत् ॥
स्मरणे पुत्र - कामे तु, शान्ति - कामे तु गो-गृहे ।
कलशं स्थापनं कुर्यात्, पूजयेत् तु समाहितः ॥
मारणे श्मशान - भूमौ, पठेत् स्तोत्रं समाहितः ।
उच्चाटने विग्रहे च, अश्वत्थस्य च मूलके ॥

॥ 'क्रोड-तन्त्रे' ।

स्तम्भने पूर्व - मुखे च, मारणे दक्षिणं मुखम् ।
उच्चाटने विग्रहे च, पश्चिमाभिमुखं पठेत् ॥
प्रेत-शान्तौ रोग - शान्तौ, शतावृत्तिं पठेन्नरः ।
त्रि-सन्ध्यमेकावृत्या तु, पठेत् साध्यमनुत्तमम् ॥
मारणे उच्चाटने च, विग्रहे तु विशेषतः ।
त्रि-षष्ट्यावृत्ति-मात्रेण, कार्य - सिद्धिर्न संशयः ॥
ग्रह-शान्तौ ज्वर-शान्तौ, रोग-शान्तौ विशेषतः ।
द्विरावृत्या पठेन्नित्यं, त्रि-सन्ध्यं तु समाहितः ॥
अन्ते च सर्व - कार्येषु, एक - विशतिकं पठेत् ।

॥ 'रुद्रयामले' लिङ्गार्चन-विधि ॥

स्तम्भने रजनी (हरिद्रा) प्रोक्तं, मारणे लोह-मयं तथा ।
ज्वर-शान्तौ चन्दनं च, पृष्ठ-रोगे तु गोमयम् ॥
पुत्र-कामे शालि-चूर्णं, भूत-शान्तौ रजतं तथा ।
ग्रह-शान्तौ अष्ट - धातून्, सर्व-कार्येषु मृन्मयम् ॥

॥ 'वाराही तन्त्रे' ॥

स्तम्भने कांस्य-पात्रेण, उच्चाटने विग्रहे तथा ।
मारणे लोह - मयं पात्रं, इत्युक्तं रुद्र-यामले ॥
ब्रह्म - राक्षस - भूतेषु, डाकिन्यां च विशेषतः ।
कार्यं पित्तल - पात्रं तु, तदा सिद्धिर्न संशयः ॥
भूमि-कामे पुत्र - कामे, रोग-शान्तौ ज्वरादिषु ।
अष्ट-धातु-तमं पात्रं, पूजयेत् भक्ति - तत्परः ॥
ग्रह-शान्तौ ताम्र-पात्रं, इत्यतः नान्यथा भवेत् ।

॥ 'क्रोड-तन्त्रे' जप-विधिः, तन्मन्त्र ॥

ॐ हां ह्रीं हूं ह्रें ह्रैं ह्रौं ह्रं ह्रः ह्रं स्वाहा । अयुतं जपेत् सिद्धिः ।

ॐ क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रौं क्रं क्रः स्वाहा । अयुतं जपेत् सिद्धिः ।

सर्व-कार्येषु मूल-मन्त्रं जपित्वा—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं महा-विद्यायै स्वाहा । (अयुतं जपेत्)

॥ रुद्रयामले महा-विद्या विधिः सम्पूर्णा ॥

॥ विशेष सूचना ॥

परम्परा-गत ११ रुद्र-मूर्ति बनाना होगा । सप्तमी, नवमी या चतुर्दशी के दिन हवन करे । पाठ की ४१, ३१, २१ या ११ आवृत्तियाँ करे । तब हवन करे । आराधना रात्रि में ११ बजे से ३ बजे तक करे । दिन में ६ से १२ बजे तक तामस आराध्य के लिए है । राजस आराध्य में ७ से १० बजे रात्रि में, दिन में ८ से ४ बजे तक । सात्विक किसी भी समय कर सकता है । हविष्यान्न का हो भोजन करे । तैल न खाए, पीला वस्त्र पहने, सजल नारियल देवी जी को चढ़ावे । पीत अक्षत, पीत पुष्प, पीत चन्दन, पीला वेष्टन रखे । कुशा की मूंजी पाठ की पुस्तक में रखे । गोरोचन पास में अवश्य रखे ।



स्व-राष्ट्र-कल्याणार्थं सप्त-श्लोकी चण्डी का पाठ

'चण्डी' वर्ष ५१, अन्तिम अङ्क के आवरण-पृष्ठ तीन पर प्रकाशित 'नवरात्र की भावना' के अन्तर्गत साधक बन्धुओं से अनुरोध किया गया था कि वे अपनी नित्य की साधना के पूर्व अपने राष्ट्र भारत के कल्याण के लिए 'सप्त-श्लोकी चण्डी' का पाठ किया करें । प्रसन्नता की बात है कि इस अनुरोध को अनेक बन्धुओं ने स्वीकार किया । राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल होगा, तो प्रत्येक व्यक्ति-परिवार-समाज भी सुख एवं शान्ति का अनुभव करेगा । अतः जो देश-भक्त साधक बन्धु 'सप्त-श्लोकी चण्डी-पाठ' के इस अभियान में भाग ले रहे हैं या लेंगे, उनके शुभ नाम-पते 'चण्डी' के अङ्क में प्रकाशित किए जाएंगे, जिससे अन्य बन्धुओं को भी प्रेरणा मिल सके । इस सम्बन्ध में यदि किन्हीं बन्धु को कोई जिज्ञासा हो, तो वे इस अभियान के संयोजकों से पत्र-सम्पर्क कर सकते हैं—

सर्वश्री पं० सतीशकुमार उपाध्याय/ठा० अमरसिंह 'अमर'

द्वारा 'चण्डी'-कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, प्रयागराज (उ० प्र०)—२११००६

धार्मिक जगत की हलचल

सम्पर्क-सूत्र : पं० जीवेश्वर मिश्र, श्यामा सदन, मिश्र टोला, दरभङ्गा (बिहार)

‘पटन देवी मण्डल’ द्वारा माँ पीताम्बरा यज्ञ’ का अनुष्ठान

ब्रह्मास्त्र-अधिष्ठात्री पीताम्बरा आवाहन-यज्ञ अपने आप में अद्वितीय होगा। अतः सभी प्रेमी-गणों से अपेक्षा है कि वे अवश्य आवें। विवरण निम्न प्रकार है—

१. उक्त यज्ञ—३० मई प्रातः से प्रारम्भ होकर एक जून की सन्ध्या तक होगा। तदनुसार प्रेमी-गणों को २६ मई सन्ध्या तक ‘गलमा’ पहुँचना चाहिए और दो जून प्रातः प्रस्थान कर सकेंगे।

२. यज्ञ में—होता-११, जप-कर्त्ता-११, पाठ-कर्त्ता-११, एक आचार्य, एक पुरोहित एवं एक यजमान—कुल मिलाकर ३६ प्रेमी भक्तों की न्यूनतम आवश्यकता है। पाँच स्थानीय साधक व्यवस्था में रहेंगे। साधक अधिकाधिक हों, जिससे यज्ञावधि में अपने-अपने इष्ट के सान्निध्य में जपादि हो सके।

३. यज्ञावधि—प्रातः दस बजे से बारह बजे तक। अपराह्न तीन बजे से पाँच बजे तक। रात्रि आठ से दस बजे तक। इसके अतिरिक्त रात्रि में वीर - पूजनादि हुआ करेगा। ‘महा - चक्रार्चन’ अन्तिम रात्रि में होगा।

४. सत्सङ्ग—मातृ-सत्सङ्ग प्रातः ८ से ६ बजे तक। सामूहिक प्रेमी-गण-सत्सङ्ग प्रातः ६ से १० बजे तक। व्यक्तिगत सत्सङ्ग अपराह्न २ बजे से ३ बजे तक।

५. प्रवचन—तीनों दिन—सन्ध्या ५ बजे से सात बजे तक सार्वजनिक होगा।

६. आहार—दिन में फलाहार एवं रात्रि-भोजनादि की व्यवस्था रहेगी। जो केवल जल और पाठ पर रहेंगे, वे दिन में भी भोजन कर सकेंगे।

७. आमन्त्रण—प्रेमी-गण के अतिरिक्त ऐसे पण्डित, जो तन्त्र-ज्ञाता हों और मन्दिर पर सेवा-भाव से आवें, सादर आमन्त्रित हैं।

८. महा-आरती—सन्ध्या सात बजे।

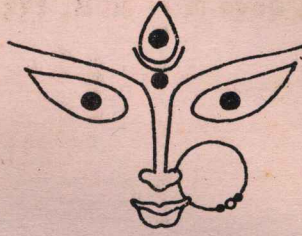
९. प्रसाद-वितरण—दोपहर बारह बजे।

‘कौल-कल्पतरु’ चण्डी

‘चण्डी’ मासिक पत्रिका की विशेषता यह है कि यदि आप इसे ध्यान से पढ़ने की कृपा करेंगे, तो आपको हिन्दू-धर्म के व्यावहारिक पक्ष को समझने में बड़ी सरलता होगी। ‘हिन्दू - धर्म’ केवल एक सिद्धान्त या दर्शन मात्र नहीं है। उसका ज्ञान-मय क्रियात्मक पक्ष भी है और वही वास्तविक महत्त्व-वाला है।

‘चण्डी’ आपको अपने ‘हिन्दू-धर्म’ के क्रियात्मक पक्ष का पालन करने में कितनी सहायता दे सकती है, यह तो आप इसे अपना कर स्वयं ही समझ सकते हैं। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि जिसने भी ‘चण्डी’ को ध्यान से जैसे ही देखा है, वह उसी समय से ‘चण्डी’ मासिक पत्रिका का स्थायी ग्राहक बन गया।

अतः अपने शहर के समाचार - पत्र - विक्रेताओं से ‘चण्डी’ मासिक पत्रिका की आज ही माँग कीजिए अथवा हमें लिखिए—‘चण्डी’-कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग-६



‘श्री दुर्गा सप्तशती’ सम्बन्धी उपयोगी पुस्तकें

- १ — सप्तशती- तत्व १० - ००
‘श्री दुर्गा सप्तशती’ के ऐतिहासिक आख्यान की दार्शनिक व्याख्या
- २ — सप्तशती - सूक्त- रहस्य (प्रेस में)
सप्तशती की पाँच स्तुतियों — १ रात्रि - सूक्त, २ शक्रादि - स्तुति, ३ श्रीनारायणी स्तुति, ४ देवी- उक्ति, ५ श्री देवी - सूक्त की ज्ञान - दायिनी विस्तृत व्याख्या।
- ३ — मन्त्रात्मक सप्तशती (स-जिल्द) १०० - ००
‘श्री दुर्गा सप्तशती’ के ७०० मन्त्रों में से प्रत्येक मन्त्र के अनुष्ठान की अभूतपूर्व अनुभूत विधि।
- ४ — सार्थ चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती) ७५ - ००
‘गुप्तवती’, ‘शान्तनवी’ आदि प्रसिद्ध संस्कृत टीकाओं के आधार पर हिन्दी में पहली बार ‘श्रीदुर्गा सप्तशती’ के प्रत्येक श्लोक की विस्तृत व्याख्या।
- ५ — सप्तशती - रहस्य ५ - ००
‘श्रीदुर्गा सप्तशती’ का पाठ - क्रम, पुरश्चरण, मन्त्र - प्रयोग एवं प्रश्न - विचार
- ६ — श्री दुर्गायण (हिन्दी छन्दानुवाद) १० - ००
अर्गला, कवच, कीलक, रात्रि - सूक्त, तेरह अध्यायों, देवी- सूक्त का अनूठा छन्दानुवाद।
- ७ — बीज- त्रयात्मक दुर्गा - सप्तशती ४ - ००
‘रहस्य-तन्त्र’ में निहित ‘सप्तशती’ अनुष्ठान की बीज-त्रयात्मक विधि
- ८ — रुद्र- चण्डी ७ - ००
‘रुद्र- यामल तन्त्र’ में निहित ‘सप्तशती’ - अनुष्ठान की विधि
- ९ — सप्तशती के विविध प्रकार १५ - ००
‘सप्त - श्लोकी दुर्गा’, ‘त्रयोदश- श्लोकी दुर्गा’, ‘गुप्त सप्तशती’, ‘मूल सप्तशती’, ‘श्रीगर्भ - चण्डी’, ‘बदुक- भैरव - स्तोत्र घटित चण्डी - विधान’ एवं ‘सप्तशती - सार- स्तोत्र’ सहित।
- १० — लघु चण्डी (हिन्दी अनुवाद सहित) ४ - ००
महर्षि वेद - व्यास रचित श्रीमद् - देवी भागवत में निहित सप्तशती का मूल - पाठ।



भारतीयों की मनोदशा

स्वतन्त्र भारत का हिन्दू जब अपने चारों ओर अपनी निगाह डालता है, तो चकित और हैरान हो उठता है। वह सोचने लगता है कि भारत की लोकोत्तर भूमि पर यह क्या हो रहा है ?

राजनैतिक या सामाजिक या आर्थिक नीतियों के कारण होनेवाली ध्वंस-लीला को देखकर उसका मन विचलित हो उठता है। वह विचार करने लगता है कि पाश्चात्य देशों के आदर्शों को ग्रहण कर हमारे देश के नेता स्व-देश को रसातल पहुँचाने का उपक्रम क्यों कर रहे हैं ?

पं० देवीदत्त शुक्ल